कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

श्रीसीतारामाभ्यान्नमः

सन्त वचनावली

-:जिसको:-

तरण तारण अधर्मोद्धारण सन्त शिरताज रसिकाधिराज

श्री १०८ स्वामी युगलानन्य शरणजी महाराज

(लक्ष्मणकोट, अयोध्यावासीने)

श्री १०८ परमहंसप्रवर श्री स्वामी सीता शरणजी महाराज,

कनकभवन निवासीके निमित्त निर्माण किया।

उसीको

उक्त श्रीपरमहंसजीके कृपापात्र शिष्य

श्री बाबू बजरङ्गलाल सराफ लकड़ सीतामढ़ी निवासीने

प्रकाशित किया।

[प्रथमावृत्ति १०००] सं १९८० वै० [मूल्य प्रेम

श्रीसीतारामाभ्यान्नमः

सन्त वचनावली

-:जिसको:-

तरण तारण अधर्मोद्धारण सन्त शिरताज रसिकाधिराज

श्री १०८ स्वामी युगलानन्य शरणजी महाराज

(लक्ष्मणकोट, अयोध्यावासीने)

श्री १०८ परमहंसप्रवर श्री स्वामी सीता शरणजी महाराज,

कनकभवन निवासीके निमित्त निर्माण किया।

उसीको

उक्त श्रीपरमहंसजीके कृपापात्र शिष्य

श्री बाबू बजरङ्गलाल सराफ लक्कड़ सीतामढ़ी निवासीने

प्रकाशित किया।

प्रथमावृत्ति १०००] सं १९८० वै० [मूल्य प्रेम

प्रकाशक—
श्रीबाबू बजरंगलाल सराफ लकड़
सीतामढ़ी ।

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका,
"हनुमान प्रेस"
३, माधव सेठ लेन,
कलकत्ता ।

श्री १०८ स्वामी युगलानन्य शरणजी महाराज
(लक्ष्मणकोट, अयोध्यावासी)

* श्री सीतारामजी *

अथ

श्रीसन्त वचनावली।

प्रथम शतक।

अथ विचित्र वचन श्रीराम भक्तनके। असंख्य जीव मोहमाया-की निद्रामें सोते पड़े हैं। कोई बिरला पुरुष इस निद्रासे जागा है, जो जागा है तिसके हृदयमें परमेश्वरके भजनरूपी खेत जमा है तिस परम भजनरूपी खेतका फल श्रीराम दर्शन है। पर भजनरूपी खेतपर रक्षा भली भांति चाहिये। जैसे अनाजके खेत ऊपर राखी राखते हैं जिसमें पशु न खाय जावे, चोर न काट ले जावे, पक्षी चुग न ले जावे, शूकर न उखाड़ ले जावे, हरिन न खाय जावे। ऐसे ही भजनका खेत भी रक्षा लायक है। भोगरूपी पशु, अहङ्काररूप चोर, संकल्परूपी पक्षी, दम्भरूपी शूकर, प्रयोजनरूपी हरिन, इन सब दुष्टनसे रक्षा लायक है और जिन्होंने रक्षा नहीं किया, तिसका खेत उजड़ जाता है॥ १॥

और वचन यह है। किसी सन्तसे साधुने प्रश्न किया कि करन कारन एक परमेश्वर है कि कोई और भी है? तब सन्तने उत्तर दिया कि करन कारन एक परमेश्वर है, जैसे मन्दिर काष्ट

के आश्रय है, किसी ठौर मन्दिरके काठ थम्भ होय खड़ा है, कहीं काठ बड़ेरा रूप, कहीं कड़ी रूप, कहीं तखती रूप खड़ा है, नाना रूप करि काठ मन्दिरको उठाये है नाम अनेक काठ एक है; तैसे ही जगतकी रचना सब बुद्धिके आश्रय ठहराई है, आश्रयकी विश्वकी बुद्धि है, किसी रचनामें परमेश्वरकी बुद्धि मिली है, कोई रचना ईश्वरकी बुद्धि साथ मिली है, कोई जीव बुद्धि संग मिली है, सोई बुद्धि जाति परमेश्वरकी है, ताते करन कारण परमेश्वर हुआ। यह क्यों ? और तो कोई नहीं ॥ २ ॥

और वचन है। जैसा आप परमेश्वर है तैसीही परमेश्वरकी रचना है। सो रचना अपनी आप परमेश्वर ऐसा रखा है जैसे पारेमें निःकलङ्क रखा होय, जैसे तामेमें तामेश्वर रखा होय, तैसे सब रचनामें अपना आप रखा हुआ है। जैसे पारा मारे बिना निःकलङ्क नहीं निकसता, यद्यपि भरपूर है, जब निःकलङ्क कढ़ेगा तब पारेसे कढ़ेगा :परन्तु साधना बिना नहीं, तैसेही जीवोंको भी साधना चाहिए। साधन बिना परमेश्वर नहीं प्रगटेगा ॥ ३ ॥

और जब जिज्ञासु सन्तोंके वचन सुनकर करतूति करता है तब ही हृदय शुद्ध होता है, प्रकाशता है, सर्व सुखप्रद वह वचन होता है, बिना करतूति कहानी हो जाती है, कुछ दिन रहकर भूल जाती है ॥ ४ ॥

और भलाई मनुष्यकी इन चार वस्तुमें है—एक प्रीति परमे-

श्वरकी, दूसरे धनियोंसे बेपरवाही, तीसरी गरीबी, चौथी मन ऊपर खबरदारी राखनी, जो कर्म अशुभ, न करे ॥ ५ ॥

और जगतके लोग मायाके पदार्थ विना और पदार्थ नहीं मानते, और जिज्ञासु परमेश्वरके भजन विना और वस्तु शोभनीक नहीं मानते हैं ॥ ६ ॥

और प्रसन्नता मायाकी प्रभु प्रसन्नताको दूर करती है, माया साथ प्रीति करनी शान्ति समाधिकी वैरी है ॥ ७ ॥

और प्रीतिवान वह है कि परमेश्वर विना आशा, भय किसीका न राखे और कर्म भी वही करै जिसमें प्रभु प्रसन्न होवे, और कर्म त्याग देवे ॥ ८ ॥

और परमेश्वरके प्रीतिवालेकी यह पताका है—विषयके भोग और मनकी बुरी करतूति तिसने ग्लानि आवै, अरु प्रभु भजन विना कोई स्वाँस न गँवावै ॥ ९ ॥

और अन्तःकरण तेरेको परमात्मा देखता है। शरीरको शुद्धतासे जगतकी प्रसन्नता और अन्तःकरणकी शुद्धतासे प्रभुकी रीझ है ॥ १० ॥

और किसी साधुसे साधुने पूछा कि परमेश्वरको कौन बात नहीं भावती है? सन्तने उत्तर दिया—सबते आपको श्रेष्ठ मानना प्रभुको पसन्द नहीं है। अपनी करतूतिका बदला चाहना, यह भी नहीं भावती है ॥ ११ ॥

और किसी साधुसे साधुने पूछा कि सूरमा कौन है? सन्तने

उत्तर दिया–शूर वही जो विषयको जीते, क्रोधादिक जीते, धर्मते न गिरे, सत्य बोले, विद्यासे मनको रोके ॥ १२ ॥

और गरीबीका यह लक्षण है—बुरी बात सुनके आप न कहे, शान्त विवाद रहित रहे, मान सबको दे, आप अमानी रहे, सो गरीबी शुद्ध है ॥ १३ ॥

और साधुने सन्तसे पूछा–"प्रभुप्रियपंथ।" तब सन्तने उत्तर दिया–विवेकिनका संग, अज्ञानिनका त्याग, सदा सन्त उपदेश मनमें धारना, यह प्रभुप्रियपंथ है ॥ १४ ॥

और पानी पर तरना, आकाशमें उड़ना, मनकी बात बूझना, इन सबसे यह विशेष है—मनको बुरे स्वभावसे फेरना, सब जीवको राज़ी रखना, अशुद्ध अन्न त्यागना, यह श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

और आपको जो नीचा जानता है प्रभु उसको ऊँचा करता है, ऊँचाको अति नीचा करता है, यह सब सन्तोंका मत है ॥ १६ ॥

और उत्तम पुरुष वह है जिसको बुरे स्वभावोंने नष्ट नहीं किया। निर्बुद्धि मनुष्य वह है जिसको लोभने बाँधा। समझवान पुरुष वह है जिसने मरनेसे पहले ही माया त्यागा ॥ १७ ॥

और जबलग तेरा मन माया संग बंधमान है तब लग श्रीरामरससुधाकी चाह न करो, प्राप्त न होगा। जब लग जग जञ्जाल मीठा लगता है तबतक सन्त वचन पीयूषकी आशा न करो, प्राप्ति अगम है ॥ १८ ॥

और जगतकी प्रभुताका स्वाद लेना महापाप है और प्रीति करनी मायावालोंसे धनके अर्थ सो परलोककी बुराई है ॥ १६ ॥

और किसी साधुने सन्त साथ पूछा कि फकीरीका लक्षण क्या है? सन्तने उत्तर दिया कि फकीरीका लक्षण यह है कि सकल विश्वकी माया आई हुई अपने हाथसे बाँट देवे, अपने शरीरके अर्थ एक पैसा न राखे, यों जाने कि रिज़्क देनेवाले श्री राम हैं ॥ २० ॥

और वचन। जैसे अनाजका थोड़ा खाना शरीरको सुखी रखता है, तैसेही पापोंका त्याग मनको सुखी रखता है । २१ ।

और मन मैलेकी पाँच निशानी है—प्रथम यह कि भजनका स्वाद नहीं आवता, दूजे परमेश्वर साथ निर्भय रहना, तीजे माया के पदार्थ सत्य जाने, चौथे प्रभुचर्चा सुनि विसर जावै, पांचवीं संसारिनकी बात प्रिय लागै ॥ २२ ॥

और जो मनुष्य सत् संगतिमें न सुधरा, पढ़ा बहुत है तौ भी उजड़ी बाड़ीकी नाईं है। जैसे वाटिका दृष्टि आवती है परन्तु फलहीन है, तैसे ही विना बोध भये काम कोह विना गये पण्डित भी अशोभित है ॥ २३ ॥

और निश्चयवान्के तीन लक्षण हैं—प्रथम यह कि सर्व पदार्थ में प्रभु कारीगरीका विचार, दूजा सदा प्रभु स्मरण, तीजा विनय हरसायत हृदयमें लगा रहै, अपने आपको प्रभुमें विनाश किया चाहता है ॥ २४ ॥

और विद्यावान बहुत हैं पर करतूति सहित पण्डित कोई है,

कर्त्तव्यवाले भी बहुत हैं पर निःकाम कोई है, महन्त बहुत हैं पर अपने हृदयते मान दूर राखे ऐसे महन्त थोड़े हैं ॥ २५ ॥

और जगतमें रहना पर हर्ष सोगसे रहित रहना, यह काम सन्तोंका है। निर्धनताईमें प्रसन्न रहना, यह वैराग्यवानोंका काम है ॥ २६ ॥

और बड़े से बड़ा सुख जिज्ञासुओंको एकाग्रताका है, बड़ा दुःख सङ्कट मनका पसार मानते हैं ॥ २७ ॥

और जिसको तीन वस्तु साथ स्नेह है सो प्रभु प्रिय है—एक यह कि अन्नजल करके उदर न भरना, दूसरे हृदय सदा सन्तोषी राखे, चाहना सबही बिसार छोड़े, तीसरा निरहंकारी हृदय राखना, परमेश्वरके भयमें हृदय डुबाये राखना ॥ २८ ॥

और ममता लिए स्वाद, सो साईंका नहीं, ममताते रहित स्वाद साईंका है, परस्पर विरोध है, सब सन्तोंका मत है ॥२९॥

और जिसके हृदयमें परमेश्वरकी प्रीति साँची है तिनको मीचका भय नहीं, शरीरके छूटे प्रभु प्रीति बढ़ती है, घटती नहीं, जाते शरीरका परदा उठा निपट साईं स्वरूप रहा ॥ ३० ॥

और जिस पुरुषने सन्तोंकी संगति छोड़के एकान्त पकड़ी है तिसको चाहिये जो सदा अशुभ सम्बन्ध अपवित्रसे अपना मन पवित्र राखे, मन अडोल रहै तब एकान्त सुखप्रद है नहीं तो नष्ट करि डारेगा। एकान्त रहना उसका अधिकार है जो परमेश्वर को सदा समीप देखे और प्रभुके भयमें मनको राखे रहै, नहीं तो एकान्त उसको विनाश करेगा ॥ ३१ ॥

साईं देखा जाता है पर फकीर देखा नहीं जाता। साईं आपकर सत्य है, फकीर अपने आप कर असत्य है ॥ ३२ ॥

जैसे अन्न पानी विना स्थूल शरीर नहीं रह सकता है तैसे संत संग, सन्त वचन बिना श्रवण किये परमेश्वरकी प्रीति उपजती ठहरती नहीं। जब प्रीति नहीं तब मृतक है ॥ ३३ ॥

और श्रीसीताराम सम्बन्धी कहावना, वेष बनावना तो सुलभ है, लोकोंको पुजावना भी सहज है, श्रीरामका होना कठिन है। महाराजका साँचा फकीर वह है जो हर्ष-शोक, हानि-लाभ में सम मति रहै, मान-अपमान, यश-अपयश सम माने, सो प्रभुका है ॥ ३४ ॥

और उत्तम पुरुष वह है जो एक दिनमें चालीस बार मरे, तैसे ही रातके अर्थ यह है कि मनके संकल्प रूप अनेक शीश हैं तिनको काटता रहै, बुरे संकल्प उठने न देवै ॥ ३५ ॥

उत्तम भजन यह है कि प्रभुके भजनमें आपको अभाव करि रहै, एक परमेश्वर रह जाय, नदीमें बूँद समा जाते हैं, तैसे ही लीन हो जाय, यह उत्तम है, प्रीति सबमें ॥ ३६ ॥

किसी फकीरको किसीने दुर्वचन कहा। तब फकीरको क्षोभ उपजा। तब उस मनुष्यने कहा कि जो तू बोझ उठा नहीं सकता था तो वेष, गुदड़ी काहेको धारण किया ? जीवित मृतक विना फकीर कहाना वृथा है ॥ ३७ ॥

और किसी सन्तने स्वप्न देखा, तिसमें एक सुन्दर स्वरूप देख पड़ा। तब सन्तने पूछा—"तुम कौन हो ?" उसने कहा

—"मैं प्रेम हूं।" साधुने कहा—"आपका निवास कहाँ है ?" उत्तर दिया—"श्रीराम भक्त स्नेहिनके पास है" ॥ ३८ ॥

और एक सन्तने स्वप्नमें महा कुरूपा स्त्रीके आकारसे देखा। तब साधुने पूछा—"तू कौन है ?" उसने कहा मैं हाँसी हूं।" सन्तने पूछा—"तेरा निवास कहाँ है ?" उसने कहा—"प्रभु विमुख अचेत हृदयमें मेरा निवास है।" अचेत पुरुषोंका हृदय इन छ बातोंकर मलीन रहता है। एक यह जो परमेश्वर साथ उनकी प्रीति कुछ नहीं, दूजे अपनी वासनाके दास हैं, तीजे उनको मरना चिन्तवन नहीं, चौथे कामादिकों साथ प्रीति करते हैं, पञ्चम सन्तोंकी संगति विना रहते हैं, छठवाँ अभिमान साथहु बड़ाई साथ रहते हैं ॥ ३९ ॥

और कोई विद्वान् किसी साँचे सन्त पास आयके मनमें तर्क करता भया। जो मुझमें विद्या चतुराई सब गुण इससे अधिक है और खान पान वसन भी हमको इससे अधिक है पर मानता सब लोक इसकी अधिक करते हैं सो क्या कारण है ? इस बातका उत्तर सन्त मनकी बात जानके देते भये। दीपककी तरफ उंगुली करके कहा—"हे भाई ! तेल व पानी आपुसमें युद्ध करते हैं। पानी कहता है—'रे तेल ! मेरे पीवने करि प्यास दूर होती है, शीतल होता है, तू मेरे ऊपर क्यों चढ़ बैठता है ? मैं तेरेसों विशेष हूं।' तेल कहता है 'हे जल ! मैंने जो विशेषता पाई है सो यह गुण है, पहले अपने आपको कोल्हूमें पेराया है, त्योंही आपको आगमें जलाया है, तब प्रकाश पाया है, तब भी

अपनेको जलाय औरोंको प्रकाश देता हूं, इसी गुणसे विशेष हूं। यह बैन मनोहर सुनिके पण्डित पूर्ण सन्त मानता भया, आपसे सहस्र भाग विशेष मानता भया, अपना संकल्प मिथ्या मानता भया ॥ ४० ॥

और अक्षरोंके पढ़नेका अनूप फल यह है कि अक्षरोंका अर्थ विचारे और अर्थ समझनेका यह फल है कि अनर्थ त्यागे और अनर्थ त्यागनेका फल यह है कि संतोंकी संगतिका अधिकारी होवे, जब सन्तोंकी संगति युक्तिसमेत होती है तब सन्तोंकी प्रसन्नताका भाजन होता है, सन्तोंकी प्रसन्नता पाई तब परमेश्वर पाया ॥ ४१ ॥

और जीव परमेश्वरमें पाँच परदे हैं। एक आलस, द्वितीय कुटुम्बका मोह, तीजा विषयकी प्रीति, चौथा अभिमान, पाँचवाँ विश्वकी ममता प्रभुता। पाँचों परदे दूर होंय तब प्रभु मिले ॥४२॥

और मन ठग है। ठगोंके सम नाना भोजन करता है। मन भी बहु विषयोंको भोगता है ताते गुरु मुख मनको जीतते हैं। उसका कहा नहीं करते। सत्य विचार, भजन रूप पहरा सदा देते हैं। होशियार रहिके चोरसे बचते है ॥ ४३ ॥

और किसी साधुसे साधुने गुरुमतका रूप पूछा। तब साधुने उत्तर दिया—गुरुमतका यह रूप है, प्रथमे जिसने मनमतको दूर किया है, गुरुमुख वहीं प्रगटता है। जैसे माली पैवन्दी करने समय प्रथम टासीको काट डारता है, जिस टासीमें पैवन्दी लगावता है सो फैलती है, प्रथम टासी काटता है, उनकी वृद्धि होने नहीं देता,

सो जब ऐसी खबरदारी करे तब उस वृक्षके अद्भुत फल होते हैं। तरु वही दृष्टि आवता है फल और हो जाते हैं। ऐसे ही जब मनमतके धर्म नाश होते हैं तब गुरु मुखता प्रगट होती है, दृष्टि वही आवता है, होय सन्त जाता है ॥ ४४ ॥

और कोई सन्त परमेश्वर समीप ऐसे विनय करता था—हे परमेश्वर! तूने अनेक भाँतिकी विष रची है पर "हूं–मैं" महा दीर्घ विष रची है। और विष जीवोंको एक जन्म क्षय करती है, "हूं–मैं" विष सदा मारती है। ऐसी करुणा कीजिये जिसमें यह विष दूर होय। आपही ते उपजावता है और अपनी कृपा करके नाश भी आप ही करता है, दूजा कोई नहीं है, जैसे रावणको आप ही नें जन्म दिया, आपहीने मारा, तैसे ही कृपा करो ॥ ४६

और जो कुटुम्ब साथ मोह करते हैं सो अपनी मोती तोड़ावते हैं। इसीपर एक कथा है। एक मनुष्यने वानर पाला, प्रीति किया, गृह रक्षक बनाया। एक दिन चोर मोतीका डब्बा चोराय ले चले। तब वानरने दूर जाय छीना। फिर खोलिके मुखमें डारि डारि स्वाद विना जानि पाथरसे तोड़ा। धनी पुरुष जागिके डब्बा वानरसमेत न देखा। तब खोजके पाया। हाय हाय करिके कहा कि अज्ञानीकी प्रीतिका फल मोतीकी हानि है। ऐसे ही कुटुम्बोंसे स्नेह सजिके मनुष्य जन्म अमोलक स्वाँस विषय धन्धेमें नाश होजायगा, परिवार ही वैरी है ॥ ४६ ॥

और जब स्थूल कुटुम्ब छूटे तब सूक्ष्म कुटुम्ब इसके साथ

और भी हैं, तिनका स्वरूप सुनो। ममता माता, लोभ पिता, शरीरकी प्रीति स्त्री, इन्द्रिय भोग भाई, बुरी चिन्तवनि सुता, अपकर्म रुचि पुत्र यह सब आय मिलते हैं, दोनों सम्बन्ध छूटे तब परमेश्वरके योग्य होय ॥ ४७ ॥

और जिन पुरुषोंने काम क्रोधादि शत्रु मारे हैं तिन्होंने सब सन्तोंकी आज्ञा मानी है। सभोंकी यही सम्मति थी ।४८।

और श्रीनारद मुनीश अंगिरा ऋषि समेत सब तीर्थोंकी प्रदक्षिणा करते करते हाटमें बैठे। देखते क्या हैं कि उसी नगरके हाटमें एक बकराको कसाई लेके चला जाता है। तब वह बकरा छूटिके एक दूकानसे थोड़ा दाना मुँहमें डाल लिया। बनिया उसको पकरि मारा, दाना भी छीना, पकड़िके कसाईको भी दे दिया। यह चरित्र देखिके श्रीनारदजूने दुःखसमेत स्वाँस लिया। तब अंगिराजीने कहा—"हे महाराज! आप तो आनन्दरूप हो, खेद क्या है?" तब श्रीनारदजी बोले—"संसार की रीति देखि मैंने दुःख पाया है। यह बकरा इस बनियेका बाप है, दूकान भी इसीने डालीथी, उसी ही सम्बन्धसे, अभ्याससे दाना लिया था, तिसकी यह गति होती भई। बड़ी मेहनतसे पीर—फ़क़ीर मनायके यह लड़का भया था। सो मुँहमें दाना लेने नहीं देता। देखो, मनुष्य वृथा धन्धेमें पचते हैं, जिसमें सुख रञ्चक नहीं। ऐसा नहीं करते जो दुःख समुद्रसे तरि जायँ ॥ ४९ ॥

और परम सन्तोंकी यह निशानी है, जिनके पाँच चिन्ह हैं—

एक तो बाँटि खाना, दूजी गरीबी, तीजी बेपरवाही, चौथी अचिन्त्य वृत्ति, पञ्चम सदा हरि यशका व्यवहार. असार बिना ॥५०॥

और पांच प्रकारका मांस जगत भक्षण करता है पर जिज्ञासु को सब त्यागना उचित है। प्रथम मांस पशुआदिक, दूजा मांस कामादि भोग, तीजा मांस सुन्दररूप विषय, चौथा मांस निन्दा, पञ्चम विषय शब्द राग दुर्वचनका; पांचों तजे पवित्र होगा ॥५१॥

और वचन यह है। चार प्रकारकी निद्रा है, सबसे जागे तब सन्त वचन उपदेश लगे। सो चारि निद्रा यह है—प्रथम सुषुप्ति निद्रा है, अन्न जलके खाने करिके चेतनता आवरण हो जाती है। दूसरी निद्रा संकल्प बाहर निकल जानेकी है जो द्रष्टि श्रवण होते न सुने जाते हैं, मन भिन्न ही सैर करता है। तीसरी निद्रा वचनका अर्थ न समझनेका है, पढ़ना न पढ़ना दोनों बराबर है, चौथी निद्रा वचन अनुसार करनी न करनी, जब करनी न हुई तब सुख स्वादसे बाहर रहा ॥५२॥

और तीन लक्षण जिज्ञासुओंके उत्तम हैं, सहनशीलता भूमि की नाईं, उदारता नदीकी नाईं, दयालुता मेघकी नाईं। तीनों होय तब प्रभुके मिलने योग्य होय ॥५३॥

और पांच प्रकारसे जीवोंकी अवस्था चली जाती है। कुमतिका कहना करना, उदरभरि खावना, सुषुप्ति निद्रामें बहुत सोवना, कामादिक हू साथ प्रीति करनी, परनिन्दा विषय झगड़े

लड़ाईमें डूबे रहना, असत्य वचनमें मनको परचाये रहना ॥१॥ तामसी मनुष्यनकी रीति कही। अब राजसी मनुष्ययकी आयु-यों चली जाती है—मोहादिकोंका दास रहना, विषयोंकी प्रीति हृदयमें प्रबल, मान प्रभुताकी चाह, उदर पुरनेकी चिन्तामें, वाद विवादमें, मायाके बन्धनमें परचे रहना सदा ॥२॥ सात्विकी मनुष्योंकी आयु यों चली जाती है—जप, तप, व्रत, दानादि शुभ कर्म करना पर कामना समेत करना सदा ॥३॥ शुद्ध सात्विकी मनुष्योंकी आयु यों चली जाती है—सन्तोंके वचन अनुसार मनको बरतावना, प्रभु प्राप्ति अर्थ उत्साह, स्नेह हृदयमें राखना, स्वर्गादि तीनों लोकोंकी विभूतिकी इच्छा न राखनी, श्रीरामरूप नामादिकनमें छकिके रोवना, हँसना, कबहुं पछतावा करके रोवना, कबहुं श्रीराम ध्यानमें मग्न हो जाना, कबहुं प्रभु यश कहना, सुनना, इसी रसमें मन मग्न करि राखना ॥४॥ पांचवाँ जीवनमुक्त पुरुषोंकी आयुष यों बीती जाती है—श्रीरामकी चाहमें अपनी चाह लीन करि डारते हैं, उनकी इच्छा प्रधानमें खुशी हैं, अपनी रुचि तर्क (त्याग) करि डारते हैं, सहज (आनन्द) के हिंडोले पर चढ़िके दिन रात झूला करते हैं, स्तुति-निन्दा, मान-अपमान, कञ्चन-माटी सम समझते हैं, इसी मौजमें मस्त मग्न हैं ॥५॥५४॥

और मनरूप गोबरौरा है सो मलकी गोली बनावता है तिसको दिनरात ढोये फिरता है, दूसरा उसके लेने अर्थ लड़ाई करता है, तीसरा बलसे लड़कर हर लेता है, दोनों रोवते

रहि जाते हैं। ऐसे ही मिथ्या पदार्थ राज्यादिकोंके अर्थ राजा लोग आपुसमें युद्ध करते हैं, वह पदार्थ समय पाय और हो भोगता है। मतिमान सुजान प्रभु विना कुछ नहीं चाहै ॥५५॥

और सब साधन सुकृतका फल यह है कि सन्तोंके हृदयसे अपना हृदय मिलावना। तात्पर्य्य यह है कि उसके सम अचाही होना, निर्मोही होना, प्रभु रंगमें रंगना, ऐसा रंगना कि दूसरा रंग न चढ़ने पावै कभी ॥५६॥

और नरक, रोग, मौत किसीका भय न करिये। केवल छन छनमें परमेश्वरसे डरिये। भयसे प्रीति होगी। तब परमेश्वरकी कृपासे दुःख कोई नहीं व्याप सकेगा। जैसे प्रह्लादजी को अग्नि, जल, सर्प, दैत्य-दानव कोई दुःख न दे सका, सब थक गए, अन्तमें श्रीनृसिंहजी प्रगट होयके दुष्टनको मारा, उनको परमानन्द दिया। ऐसे ही जो साँची प्रीति करते हैं तिनके सब दुःख दास हो जाते हैं। प्रीति करके परीक्षा कर लीजे, असंशय ॥५७॥

और मनुष्य देहमें जो प्रयोजन राखा है सो अविनाशी परमेश्वर प्राप्तिरूप है। ऐसे छन भंगुर शरीरमें गुरुमुख अविनाशी कार्य कर लेते हैं। मनमुख विषयानन्दमें भूलके बिनाशी काज करते हैं, नाना दुःख पावते हैं, कहां तक लिखें, ताते सावधानता सार है ॥५८॥

और किसी भेड़ी चरानेवालेने लाल पाया। उसको पाषाण जानकर सेर भर जलेबीपर हलवाईके हाथ बेंचिके भागा जावै।

किसीने कहा—"काहे दौड़ता है?" उसने कहा—"एक पथरा देकर हलवाईसे मिठाई ठगा है। तिसी डरसे भागा जाता हूं कि कहीं फेर न लेवै।" ऐसे ही मनुष्य जन्म विषय तुच्छपर बेंचि के आपको बड़भागी मानते हैं। जो मायासे ठगा हुआ आप को मानते तो छूटनेका उपाय होता, सो तो कृतार्थ मानते हैं, उस नीच सम ॥५९॥

और यह दस सकार मोक्षप्रद है—सत्य, सन्तोष, सेवा, सुमिरन, सुमति, साधुसंग, समता, सहनशीलता, स्तुति परमेश्वरकी, शब्द सत्गुरुका। इसमें जो ससाग है सोई मोक्ष करेगा, दृढ़ता चाहिये ॥६०॥

और पांच पदार्थ जगतमें दुर्लभ हैं—सुमति, सत्गुरु, उपदेश वाला मित्र, प्रभुधर्म शिक्षक माता पिता, नीतिमान राजा ॥६१॥

और जीव जो अपनी आयु वृथा वितावते हैं सो आयुषका माहात्म्य नहीं जानते हैं। जब यम किङ्कर लेने आवेंगे तब जानि पड़ेगा और संकट पड़े कहेंगे—'एक दिन अर्थ हमको छोड़ जावो हम अपना भला कर लेवें।' तब धर्मदूत कहेंगे—'रे मूर्ख! हजारों दिनमें तूने अपना भला न किया संसारमें फंसिके, अब क्या करेगा? अब तो एक छन रहने न पावेगा। तेरा हुक्म मानें कि अपने मालिकका।' यह सुनिके जीव रोवेगा—हाय! ऐसा जन्म चिन्तामणि अमोलक स्वांसको हंसने खेलनेमें गंवाया, क्या किया! ॥६२॥

और जीवोंकी आयु और पदार्थ तबही प्रभुदिशि लागता है जब इसको सत्गुरु पूरा बल देता है। जैसे मशक नदीसे पार तब ही करता है जब स्वांस मनुष्य साथ मिलता है। मनुष्य स्वांस विना पार नहीं करता। तैसे ही गुरु विमल विना धन स्वांस सफल नहीं होता ॥६३॥

और जीव जब परमेश्वरके किये पर राजी नहीं होता है सो मानो प्रभुसे यह कहता है कि हमारे अनुसार सब बातें काहे न किया। देखो इसको, परमेश्वरका कीट होयके महाराजपर हुकुम करता है। और नारी सब जो कमरं बांधि मृतक अर्थ रोवती हैं सो मानो प्रभुसे झगड़ा करती हैं। जो परमेश्वर प्रत्यक्ष होय तो बहुत लड़ाई करें, आप मर रहें। इसी अवज्ञासे उनके हाथसे उनके मुंहपर तमाचा लगता है, मानो पापोंका फल मिलता है, जो तुम विमुख हो तो हाथ तो हुक्म मानते हैं। उनके हाथ नहीं हैं, जो होते तो सिरपर छार व तमांचे न मारते ॥६४॥

काम कोहादिक जो तीव्र अग्नि हैं सो महा दीर्घ हैं। काहेतें कि यह संसार भरको ग्रस लिया है। जिन पुरुषों (का हृदय) भगवंतके स्मरणरूपी अति शीतल नीरकी धारासे शांति भया है उसी शीतलताका नाम शांति है, तिस समेत सन्त पद है। सो ऐसी शीतलताई सन्तोंके पास है औरके पास नहीं ॥६५॥

और किसी साधुसे साधुने पूछा कि विश्वमें बुद्धिमान कौन है ? सन्तने उत्तर दिया-"जो मरनेसे प्रथम चेता है।" फिर साधुने पूछा-"जगतमें सुखी कौन है ?" सन्तने उत्तर दिया-"जिसकी

परमेश्वरसे बनि आई है सो सुखी है।" पुनि साधुने पूछा—"जगतमें धनी कौन है?" उत्तर—"जिसने परमेश्वरके साथ मित्रता की है।" ॥ ६६ ॥

और एक सन्त सब आयुष भर रैन सब जागा किया और दिन भर व्रत करता रहा। तब किसीने पूछा कि इतना कष्ट करते हो, यह जानते हो कि प्रमाण परमेश्वर करेगा कि नहीं। तब साधुने उत्तर दिया—"भजन करना मेरा काम है, प्रमाण करना उसका काम है। हम अपना काम करते हैं, उसका वह करेगा।" ॥६७॥

और प्रीतिमान वह है जो मायाके छलको पहचाने। जब भले कर्मका उद्यम करने लगता है तब मन क्रोध करके टाला चाहता है सो प्रीतिमान मनका कहा नहीं माने, खण्डन किया करते हैं, मनमुखहू को नष्ट कर डालते हैं। ॥६८॥

और मन अरु इन्द्रियोंका एक मत है। जिस विषयको मन चाहता है उसी विषयमें इन्द्रिय भी पुलकित हो जाती है, दोनों एकमें एक हो जाते हैं, पर जो गुरुमुख साधु हैं सो दोनोंका कहा नहीं करते हैं, जाते प्रभु विमुखताका कारण है। सदा मनादिकनसे भिन्न होयके प्रभुका स्मरण करते हैं, जैसे हाथी चला जाता है अपने रंगमें, श्वान पीछे भूंकते हैं, मतंग कूकरकी ओर नहीं देखता। ॥६९॥

और किसी साधुने साधुसे सन्तका रहस्य पूछा। तब साधुने उत्तर दिया कि बालसे सूक्ष्म और तलवारकी धारसे

तीखा है। जड़ चेतनकी जो गांठी है तिसको खोलते हैं, जड़को भिन्न करते हैं, चेतन अपने स्वरूपको जुदा करते हैं, जीवन मरणते भिन्न हो गये हैं, काल कर्म गुण स्वभावको जीते हैं, अपना दास कर लिया है। इस तरहकी दशा सन्तों ही में पाई जाती है। ॥७०॥

और किसी साधुसे साधुने पूछा कि जगतमें कौन कर्म श्रेष्ठ है? तब साधुने उत्तर दिया कि सन्तका दर्शन है, दर्शनसे नेत्र पुनीत होते हैं। बचनसे श्रवण पुनीत तैसे ही स्पर्श सेवासे शरीर पुनीत होता है अरु शब्द धारनेसे हृदय पुनीत होता है ताते दर्शन सार है। ॥७१॥

और श्रीरामको कुदरति देखि देखि सन्त प्रसन्न होते हैं। धरतीसे जो अनाज उत्पन्न होता है सो भूमिमें अन्न नहीं प्रभु शक्तिमें है। धरतीके मिस करिके प्रभु अन्न देता है, जैसे पिता पुत्रको कोठेपर चढ़कर बताशा देवे. लड़का जाने कि मेघ बरसता है, बुद्धिमान पिता हीको जानते हैं, ऐसे ही विचारना। ॥७२॥

और सन्तने साधुसे पूछा—"परमेश्वर प्रत्यक्ष रिज्क काहे नहीं देता है, धरतीका सम्बन्ध काहे किया है?" सन्तने उत्तर दिया—"दो भाँतिसे। जैसे प्रभुको रिज्क देना जरूर है तैसे जीवोंको परचावनी भी जरूर है। परमेश्वर साथ तो जीवों-कर परिचय कुछ नहीं, जो माया साथ भी न होय तो महा दुःखी होवें। इसी निमित्त भूमिसे रिज्क देता है जिसमें जीव सब परचे रहें। दूजा उत्तर यह है कि वही बात गुरुमुख प्रगट

समझते हैं, मनमुख परदेसे समझते हैं। भूमिसे रिज्क भी प्रत्यक्ष प्रभु ही देता है सन्तोंके मतमें, विमुख भूमिसे मानते हैं, उनपर परदा डाला है। ॥ ७३ ॥

किसी साधुसे साधुने पूछा—"मायाका वृक्ष कौन है? संतने उत्तर दिया—"वृक्ष वामा है। नारीसे भिन्न सब पदार्थ शाखा है, पेड़के रहे सब शाखा प्राप्त होती है, पेड़ बिना शाखा सूख जाती है। दूसरा दृष्टान्त सुनो—दीपक अरु प्रकाश! दीपक नारी स्पर्श किये दग्ध करती है, प्रकाश अन्य पदार्थ गर्म मात्र हैं। सर्वदा वामासे बचे रक्षा है। पटल दोनों हैं: लघु दीर्घका भेद है ॥७४॥

और जैसे सती अपना कंत मानिके संग जलती है, प्राण सहित सब पदार्थ त्याग करती है। ऐसही जीवको अपने प्रभु स्वामीके प्रेम ऊपर न्योछावर होजाना चाहिए ॥७५॥

और प्रेम परमेश्वका सखा है। जीवोंका उद्धार प्रेमके हाथ स्थापन किया है। जिन पुरुषोंने प्रेमका अंचल पकड़ा है सोई भव सागरसे पार उतरे हैं। जौन प्रेम संग लिपटे हैं। तिनको अँटकावता भी कोई नहीं, सो प्रभु कर कंजमें प्राप्त भये हैं ॥७६॥

और किसी संतसे संतने पूछा कि यती, धीरज, संतोष, विराग, सेवकाईका क्या स्वरूप है? स्पष्ट कृपा करि कहिये। संत ने उत्तर दिया—आठ प्रकारका काम त्यागे तब यति यथार्थ है। तिसका रूप—नारी सम्बंधी विषय वार्ता श्रवण,कीर्तन चिंतवन रूप संभाषण सुमिरन गुह्य वार्ता हांस रति स्पर्श रूप आठहु नहीं

होय तब यति है। धीरजका उत्तर यह है। धीरज चार प्रकारका जानो। प्रथम क्रोध करने वाले पर क्रोध न करना, तनुमन करि क्रोध न करना। मनकरि क्रोध यह है—शाप देना भीतरसे। सो साधु को उचित नहीं, भीतर बाहर शीतल रहे। दूजा धीरज यह है—मान अपमानमें मनि सम राखनी। तीसरा धीरज यह है—यह मनमें न लावे कि हम साधन बहुत किया, प्रभुने आशा पूरी न करी, ताते साधनका त्याग करता हूं। यह बात समझना मूढ़पन है। साधन न त्यागे कबहूं। काहेते कि परमेश्वर तो सदा बेपरवाह है, सुकृत दुःकृत दोनोंसे अलेप हैं, जीव जो कुछ करे सो अपनी भलाईके अर्थ करै, प्रभु मंगलमय एक रस है, जीवके ज्ञान अज्ञानसे रहित हैं, अज्ञान द्वारा चौरासीका दुःख, ज्ञान द्वारा परमानन्द जीव हो पावेगा। ताते प्रभु कथित साधन करता रहै, सत्य संकट सहिके पड़ा रहे, प्रभु रीझैगा। चौथा धीरज सुनो। ज्ञानी अथवा अज्ञानी सांच वचन कहै, तिसे मनमें विचारिके धारण करे, बिवाद न करे। जो विवाद करेगा तो अपनी जिज्ञासाका बीज नाश करेगा। जैसे वैद्य रोगीको औषधि देय, रोगी उसपर कोप करै तो रोगी मर जाता है। जैसे लोहार लोहे को तायके पीटता है। जो लोहा बिलरि जाता है जिसकी आरसी नहीं बनती। जो सिमटा रहता है तिसका सब कुछ बनता है। तैसेही असंत संत तब होता है जब वचन सहार न करे। संतोष का स्वरूप सुनो। तीनों लोकको सम्पदा दुःख रूप जानना, पेखिके प्रसन्न न होना परम संतोष है।

मोद मानना महा आत्महनन दोष है। ब्रह्मानन्द सागरमें संत मगन है। प्राप्ति अप्राप्ति सम मानते हैं। राग द्वेष हीन हृदय है। वैराग्य कहिये—प्रेम प्रभु विना औरके साथ रत्ती मात्र न होय जाते एक मनमें दो प्रीति असम्भव है। इसपर एक वार्त्ता है—एक सन्तका प्यारा था। सो अपने दूध पीने वाले पुत्रसे प्यार एक बार किया। तब पुत्रके द्वारा उपदेश प्रभुने किया। तब पुत्र बोला—पिताजी बड़ा आश्चर्य है। पिता बोले—"कौन आश्चर्य?" पुत्रने कहा—"मन एक है।" पिताने कहा—"हाँ एक हैं।" पुत्रने कहा—"दो प्यार कैसे संभवै? मेरे साथ प्रेम करता है अरु परमेश्वर साथ प्रीति करता है। दो प्रीति एक मनमें कैसे समाती है? इस रहस्यको विचारौ।" तब पिताने जाना कि इसके द्वारा प्रभु प्रणीत पाल मुझको उपदेश करता है। लड़केके योग्य यह बात नहीं। सन्त जबतक जीवित रहा तब तक प्रभु विना सबसे मौन करि बैठा इसको चोट कहते हैं॥ ४॥ पञ्चम दासताका स्वरूप सुनो। अपनेको शुद्धि परब्रह्मका अंश माने, देहादिक सृष्टि मिथ्या माने तब सेवाधिकारी होयगा। अनात्म आत्माका विचार करता रहै। जैसे भूसीसे चाउर भिन्न है वैसे ही आपको भिन्न माने, फिर प्रभुमें आपको लय करि डाले, प्रभु ही रहे ॥७७॥

और यह जीव तृणसे भी तुच्छ है। तृण तो पवनके स्पर्शसे कांपता है। यह विना स्पर्श कुवचन सुनि कांपता है।

अपमान वचनसे दुःखी और मान वचनसे सुखी मनमें मानता है। मानदाताको अपने स्वरूपका ज्ञाता मानिके सराहता है, दूसरेपर रोष करता है और कहता है कि मेरे स्वरूपकी दशाको यह नहीं जानता। सो यह संकल्प अहंकार भूलसे मिले हैं, सन्तको न चाहिए ॥७८॥

और सन्तजन सदा अचल, अडोल सागरसम महा गम्भीर धीर हैं। जो पर्वत, तरु, पाषाण मुखसे बोलिके प्रशंसा करें तब भी हर्षित नहीं होते हैं। स्वरूपमें स्थित हैं। निन्दासे दुःखी नहीं। जैसा आपको समझा है तिसमें मगन हैं। जब जड़के कहे खुश नहीं तब चेतनकी कहा कथा है। विश्वके मानको भूत दीपक सम चञ्चल, दुःखद मानते हैं। सन्तकी उपमा लायक कोई पदार्थ नहीं दोनों लोकोंमें ॥ ७९ ॥

और किसी साधुने परीक्षा पाई। विवाहार्थ सो पड़ी तब विवाह किया फिर श्रीगुरुके पास गया, हाल कहा। गुरुदेव बोले—"अमित जन्मदायक विवाहतें काहे किया। महा दुःखका पोट अपने सिर काहे रखा?" तब शिष्यने कहा—"गुरुजी! हमने बाबा नानककी परीक्षा पाई थी। उसके अनुसार शादी की।" श्रीगुरु बोले—"जो विना परीक्षाके करता तो समय पायके छूटता। अब तो मुक्त न होगा। जब सन्तोंके संगमें वैराग्य उदय होगा, तब मन परीक्षाका भय देखावेगा। सन्तोंके यथार्थ वचनका प्रवेश न होगा। माया ही परीक्षारूप हो तुझे छली है। दूसरा उत्तर यह है—जो विष सुधा सहित

दो पात्र होय और कोई कहै कि एक उठा ले। तब पाला फूंकना मूर्खता है। जब दोनों अमृतपात्र होवे तहां विचार लेनी चाहिये। ताते तूने भूलके विवाह और परीक्षा की है ॥ ८० ॥

और जौन जीव दास भाव धारा है सो प्रभुसे सहायता चाहा है और जिन पुरुषोंने अभिमान धारण किया है सो मानो प्रभुसे वैर किया है। काहे ते कि परमेश्वर सदा दासोंकी रक्षा करता आया है और अभिमानीका क्षय करता आया है ॥ ८१ ॥

श्रीसधनजीकी कथा। श्रीसधनजोका जन्म बकर कस्साब-के घर हुआ है। एक बकरा रोज मारते थे। उसीको मारके जोविका करते थे। जब उद्धारका समय आया तब प्रभुने चरित्र चमत्कार दिखा दिया। उस नगरका राजा था। उसकी रानी गर्भवती थी। उसका मन रात्रि समय माँसपर चला। तब राजाने सधनजीके घर सिपाही भेजा माँसार्थ। उस दिन एकादशी थी। सधनजीके घर एक बकरा था। उसका अण्ड-कोष काटनेको इच्छा करी। एकदशीके दिन कोई और मांस न लेगा, ताते गला न काटा। अण्ड जब छुरीसे काटने लगे तब बकरा बहुत हँसा और बोला कि "हमारा तेरा गला काटनका व्यवहार एकोत्तर सौ जन्मसे चला आता है परस्पर। अब तू नई रीति करता है, दोऊ दुःखी होंगे।" इस बातके सुनते ही महा भय पाया। छूरी फेंक दिया। उस बकरेके भीतरसे

महाराजने उपदेश किया। उसी दिनसे अहिंसा धारिके सन्तों की शरण जाय आर्त्त समेत पापोंका प्रायश्चित्त पूछा सन्तोंने कहा—"जैसे तूने जीवोंको दुःख दिया है तैसे ही सबकी सेवा कर, तब पुनीत होगा। उस नगरमें अन्धे, पङ्गुले, कोढ़ी रोगी जो होय तिसको बन्धुसे अधिक घरमें लायके सेवा करें, उनकी प्रसन्नता लेवें। याही भाँति सधनजी पशु पक्षी सबकी सेवा करें। सब भाँतिसे उन सबका आशीश लेवें। याही भाँति सधनजी कृतार्थ हो गए। उत्तम पद पा गए। सब पाप प्रभुने क्षमा की। सन्त पूजनीय भये। ऋद्धि सिद्धि मुक्ति सब अधीन होती भई॥ ८२॥

और कोई सन्त प्रभुसे अर्ज करता था—"हे दयालुजो! जब हमको आपने पैदा किया था, मेरे सिरमें बुरा-भला लिखा था तब हम तेरे पास न थे। संसारमें जन्म दिया तब भी मैं नहीं जानता हूं। शुभाशुभ कर्म सब तेरे रचे हुए हैं। मन मेरा मूर्ख अपनेमें शुभाशुभ मानता है। सो ऐसी कृपा कीजिये जिसमें यह मन अहङ्कार त्याग देवे, प्रभु प्रेरित सब समझे, तब बन्धनसे छूटै"॥ ८३॥

और प्रभु भक्तनको चाहिये कि यह छ गुण सदा धारण करे। प्रथम यह कि मनको सदा अपने वशमें राखे रहे, यह महा नीच ठग चोर है। दैवी सम्पत्तिको चोराया चाहता है। दूजे अपने मौतको हाजिर सदा देखे, तब आवश्यक पयान परलोकका विलोकके राह खर्च बनावेगा। तीसरे यह कि प्रभु अनुकूल कर्म

करे जिससे प्रभु रीझे। प्रतिकूल कर्मसे संसृत ताप सदा सहेगा। चौथा प्रभुको प्रगट देखे, तब नीचाचरण न करेगा। पञ्चम दृष्टि पदार्थमें मोह न करे, उसके प्रभावसे परब्रह्ममें मिलेगा। छठा दुःखको सुखसे श्रेष्ठ माने तब संसारके दुःखसे रहित होय। यह षट वार्त्ता साधुको सदा मनन करना चाहिये॥ ८४॥

और एक कर्म मिथ्या चेष्टा है। जैसे कोई भूस कूटे मूसल से तो श्रम हो हाथ लगता है। तैसेही विना भक्ति विचार त्रिगुणी क्रियासे प्रभु हृदयमें न प्रगट होगा। इन तोनोंके कर्म अनित्य हैं और शुद्ध सत्व गुणसे प्रभु प्रसन्न होता है, ताते निष्काम स्नेह करता रहै॥ ८५॥

और जिज्ञासुको मन और प्रभुसे सदा डरना चाहिये। मनको खोटी गति है अरु प्रभु वेपरवाह है, ताते दोनोंते डरे। मनका यह भय है कि कुपन्थमें चलने न देवे। प्रभुका भय यह है कि निर्हंकार रहना। अहंकारके फुरे माया ग्रसित करेगी। ताते दीनता सहित बहुत डरता रहे। दृष्टान्त—जैसे घृत सहित मिठाई शोभनीक होती है। ऐसा ही भय सहित सुमिरन है॥ ८६॥

और वार्त्ता। श्रीशुकदेवजी बारह वर्ष गर्भमें रहके पुनि प्रगटे तब दण्ड कमण्डलु लेके वनमें तप करने चले। पीछे व्यास जी प्रेमसे जाय मिले और मोह मय बचन गृहस्थों सम बहुत कहा जिस में घर फिर चलो, मेरी आशा पूर्ण करो। तब श्री शुकदेव स्वामी उत्तर देते भये-"हे पिताजी! हमको योनियों

का कष्ट याद है ताते अब न भूलेगें। भोग महारोग सोग सम मालूम देता है। अनन्त जन्मों का खेद मुझे स्मरण है। पर मैं कहां तक कहूं। संसार महा असार रूप है और विषयों की प्रियता रूपी जो वृक्ष है तिसमें अपार दुख फल लगते हैं। सो विषय मिठे जानिके हमने बहुत भोगा है, अब रुचिका लेश नहीं रहा है। प्रत्यक्ष दुःख देखि के अब कैसे चाह होय। विषय विष से तीक्ष्ण है। इस पर एक प्रसंग सुनो। एक सराफका बेटा बहुत सुन्दर एक नगरमें रहता था। उसको कभी रानीने देख लिया। तब मोहित होके सुधबुद्धि बिसार दिया। काम मदमें मातिके दासीसे कहा कि रुपये परखानेके बहाने सराफ को ले आव। शीघ्र ही दासीने वैसाही किया। तब रानीने सराफ़ को अपने पलंग पर प्रीतिसे बैठाय हांस हुलास करने लगी। उसी समय दासीने आनकर कहा--"राजा आवते हैं"। सुनिके रानी घबड़ाई। दासीसे सराफ़ को दुरावठने की रीति पूछी। उसने जवाब दिया। तब चिन्ता सहित होयके पायखानेमें सराफको छिपाया। वहां मलकी दुर्गन्धि पायके वह महादुःखी होगया। राजा भी आवतें ही दिशा को गया। उसीके उपर मल डालने लगा। उसके कपड़े अंग सब मलमें सनि गये। राजाके भयका दुख, दुर्गन्धिका दुःख, भूख प्यास का दुःख,सहता रहा पांच पहर तक। जब रातके समय राजा सो गया तब रानी (उसे) बाहर काढ़ दिया। वह महा दुःखी घर आया। स्नान दान शुक प्रभुका करिके नवीन जन्म

माना। फिर समय पायके दासो रानीकी भेजी हुई सराफके पास गई बोलचाने को। तब उसने दासी से कहा- "जो दुःख हमने अपनी आंखोंसे देख लिया है अब न भूलूंगा, तेरे साथ न जाऊंगा।" हे पिताजी! सराफ़ सम अमित बार हमने दुःख विषय के संग से भोगा है नीच योनियों में। अबतो एक श्वांस सुमिरन बिना न गवाऊंगा। प्रभुजीकी बड़ी करुणासे मनुष्य तनु सचेत सुमति समेत पाया। अब न डूबेंगे कबहूं।" व्यासजी बोले -"हे पुत्र! योनियों का दुःख कुछ हमसे भी कहो कि कैसा दुःख पाया।" तब श्री शुकदेव स्वामी बोले-"हेपिता जी! दुख तो बहुत योनियों में पाया है सो कहां तक कहूं। तिन में छ योनियों में बड़ा दुःख पाया। सो कहता हूं, सुनिये, एक बार श्वानके कानका कीट भया और श्वान परस्पर लड़ा तिसमें आधा देह मेरा उधर गया बाकी इधर रहा, तिसमें बड़ा दुःख पाया। जो दिन जिया महा खेद पाया, अब भी याद आवे है।१। फिर श्वान का देह पाया उसके ध्यानन से। सो एक दिन कोई ने मुझे मारा लोहे की छड़ीसे सिरमें। तब घाव भया। सड़के किड़ा पड़ा। बड़ी दुर्गंधी आवै, कोई नज़दीक बैठने खड़े होने न देवै। तब सिरका दुःख भूख की पीड़ा दोनों से अति दुःखित हुआ। फिर क्षुधासे कुछ दिनोंमें शरीर छूटा। उस योनीमें बड़ा कष्ट पाया है।२। एक बार पिस्सू कीड़ा भया सो किसान रोटी लिये जाता था। तिसके सरीरमें चिपट गया। तब उसने पकड़ा और हाथसे मर्दन करते हुए राहमें चला।

बड़ी पीड़ा पाई। न मरूं न जीऊं। एक ओर देहका मारा गया, एक ओर चिथा गया। उसने फेंक दिया। ग्रीष्मका दुःख ताप सहा। एकएक छन युग विता, फिर मरे, सो दुःख कहां तक कहें।३। चौथी योनी हमने डोमके टट्टू का पाया। वहां भी बड़ा दुःखी भया। खान पानसे दुःखी भया! यह खाने को अत्यन्त थोड़ा देवै, संतोष न होय सवारी करै तब मुखमें लगाम देवै। खाने न पाऊं। ऐसे भी खानेका सब तरह कष्ट पाया। अन्तमें शरीर छूटा। कष्टसे उस योनिमें जो दुःख पाया सो भी याद है।४। पांचवीं योनि धोबीका गदहा भया। सो वह बांधे राखे, खाने को न देवै, खोजनेके दुःख से चरने न देवै। जब लादिके घाट पर ले जाय वहां भी बांधे रहें। घरमें भी एक टूटे टाटका पलान ऊपर डारि देवे। तिस पर कपड़ा डारिके ले जावे, मेरी पीठ सड़ गई, रोगी भया। तबभी उसने न छोड़ा। एकदिन मेरे ऊपर चढ़ा जाता था, बीचमें एक गड़हा बहता था। उसको लाघने लगा। तब शिथिलता से मेरा पांव फिसला। तब गिरा। धोबी क्रोध करिके कीलेसे दूसरे पांवमें मारा। पांव टूट गया। तब मुझे निकम्मा जानिके त्यागि गया। वहां सब लोग हमारे ऊपर चढ़ि के गड़हे को लाघंने लगे। वहां बड़ा दुःख हमने पाया। अन्तमें भूखसे शरीर छूटा। वह दुःख भी याद है।५। छठीं योनि बिलारकी पाई। चौदह बार बिलार भया। बार बार जन्मू मरूं। बड़े बिल्लों के डरसे यह दुर्दशा रही। अन्तमें स्मरण उन्हींका होता था। जन्म तो हमने बहुत धारे परन्तु इन छ योनियोमें बड़ा दुःखी भया

सो अब संसारमें ब्राह्मणका शरीर धारे हूं। अब अखण्ड भजन करके आपको तमतें तारूंगा और काम न करूंगा ॥८७॥

और मन महा ठग है। अनेक उपायसे स्मरण धन हरता है। ताते संत जन सावधान होयके उसके छलसे अपना घर बचाते हैं, उसका अनादर करते हैं। प्रथमे घरको लुटायके पछानना मुद-दायक नहीं है ॥८८॥

और किसी संतसे साधुने मनमत का रूप पूछा। तब संत ने उत्तर दिया—सोई मनमुख है जो सत विचारसे हीन है। जैसा किसीने कहा तैसा मान लिया, आप विचार कुछ न किया। बाण सम निशानेके वेधने में अज्ञ है ॥८९॥

और गुरु मुखका स्वरूप साधुने कोई संतसे पूछा। तब उन्होंने उत्तर दिया। जब गुरु मुखता प्रगटती है तब प्रभु प्राप्तिकी इच्छा तथा वेदानुकूल रीति तथा सत्संग, निष्काम धर्ममें सहजही रुचि उपजती है। अधर्मकी चौकी उठजाती है भीतर बाहर सों॥९०॥

और जैसे जल करिके खेती बढ़ती है, वैसेही सतसंगसे प्रभु की प्रीति बढ़ती है। जब प्रीति रस साथ सींची जाती है तब संतनकी प्रसन्नता रूप फल रसमय लगते हैं तिसको जिज्ञासु पायके अमर पद पावते हैं ॥९१॥

और कोई संत प्रभुसे प्रार्थना करता था—"हे प्रभु! लोकमें प्रथम बालकको मांगना सिखावते हैं। चाहे जैसा धनी होय। संसारी माता पिता झूठे हैं, आप सांचे। हम आपके बालक हैं। हमको वह मत पढ़ाइए। जिस बुद्धिसे आपमें दृढ़ ममता होय,

सदा एक रस संगी रहै । जो विलम्ब सिखातेमें करियेगा, तो तन आपने छन भंगुर दिया है मन कहीं प्रभुप्रसन्नता बिना छूट जाय तो महा खेद रहैगा, ताते शीघ्र कृपा करिये" ॥६२॥

और कोई संत प्रभुसे विनय करते थे—"हे परमेश्वर ! संत आपके स्वरुप हैं। आप पिता वे सुपुत्र हैं। जीवोद्धारके निमित्त आपही संत रुप धारिके सुख देते हो। पिताकी प्रसन्नता पुत्रके रिझाये से होती है। दोनों एक हैं ताते संतसे स्नेह करो ॥६३॥

और यह चार लक्षण जिज्ञासुको बढ़ाना चाहिये—समता१ वैराग्य २ प्रभु रुचिमें रुचि ३ सबसे नम्र भाव ४ ॥६४॥

और मन रूपी वेगवान घोड़ा है, उपद्रवी है, बात कहे सीधा न होगा। विना तप रुपी जीन डारे और प्रभु भयरुपी चाबुक लगाये सीधा न होगा ॥६५॥

और जिज्ञासु जनको तीन लक्षण विशेष चाहिए—एक गरीबी, दूसरा सत् विचार, तीसरा बरतना शुद्ध कपट विना ॥६६॥

और एक भरोसे का तनु है, एक भरोसेका मन है। उदर पुरने की चिन्ताते निश्चिन्त रहना, प्रभुको उदार जानिके—यह भरोसेका तनु है। प्रभुका किया सम प्रिय लगे, यह भरोसेका मन है॥६७॥

जैसे शरीरके रोगका भेदी वैद्य है, रोग भी उनही करके दूर होता है। तैसेही मनके रोगके वैद्य संत हैं, वेही मन शुद्ध करि देते हैं। विना संतकरुणा नीरोगता दुर्लभ है ॥६८॥

और संतोकी काया रुपी भूमि महा कोमल है। उसमें

जैसा बीज जो बोता है, उसका फल अनन्त युगतक वैसाही खाता है ॥९९॥

और जैसे प्यास विना नीरके मध्य भी पानी नहीं पीता वैसेही प्रीति विना सत्संग नहीं करता है ॥१००॥

इति प्रथम शतक।

अथ सन्त वचनावली ।

द्वितीय शतक ।

और जिन पुरुषोंने पुरुषार्थ करके मन मारा है तिनके हृदयमें ब्रह्मानन्द अमंद कस्तूरीकी खानि प्रगटी है। और कथनीवालोंको रञ्चक सुगन्ध होता है, कस्तूरी उनके हाथ न लगी। पवन सम्बन्धसे सुगन्धि उड़ जाती है। और कस्तूरीके खानिवालोंकी सुगन्धि एक रस रहती है। ऐसे ही मायारूप पवनके लगे कथनीका बोध नहीं रहता है, करनी रहती है ॥ १ ॥

और किसी प्रीतिवानने अन्नका त्याग किया था। समय पायके श्रीगुरुजीसे कहा। तब गुरुने कहा कि जो त्याग करता है तो "मैं-मोर, ममता, मोह" का त्याग कर दे जिसमें प्रभु रीझे, अन्नने क्या क़ुसूर किया है? ॥ २ ॥

और जिनके मनमें सन्तोंवाला विवेक है, जागृत् पुरुष वही है। सन्त वचनसे विमुख मोह रूपी घोर निद्रामें सूते पड़े हैं। दृश्य मात्र जागृति है। कामादि चौर उनको लूट रहे हैं ॥ ३ ॥

और जिन सन्तोंने क्षमा सनाह पहिना है उनको दुष्टनके बैन तीक्ष्ण शर वेधि नहीं सकता है, वह शान्त शीतल हैं ॥ ४ ॥

और कोई सन्त परमेश्वरसे विनय करिके कहता था—हे प्रभो!

श्री १०८ परमहंसप्रवर स्वामी सीताशरणजी महाराज

(कनक भवन श्रीअयोध्याजी)

मैं माया सम्बन्धसे अति अपवित्र हो गया हूं। जैसे जल, अन्न देउके योगते मलीन होता है, तैसी ही मेरी गति है। चित्तादिकोंकी वृत्ति ठगोंकी नाईं हो गई है। इन्द्रिय सब प्रभु प्रतिकूल हो गई हैं। मायासे मिलके हम मायारूप हो गये हैं। छन भर प्रभु वार्त्ता नहीं रुचती है। सन्तोंका वचन मङ्गलरूप सो भी नहीं सुनता है। ऐसा अपुनीत हो गया है। इसी निमित्त सहायताको ढूढ़ता हूं। तेरी सहायता भये दुःखदेनी माया प्रमोद देवेगी, जाते माया आपको हुक्म करनेहारी दासी है, विप्रीत न कर सकेगी। कृपामें विलम्ब भये माया मुझे कष्ट देवेगी, तिस दुःखसे बुद्धि मेरी नष्ट हो जावेगी। बन्ध मुक्त दोनोंका ज्ञान जाता रहेगा। ताते शीघ्र करुणा कीजे। हे प्रभो ! मैं आपसे पिता पुत्र सम्बन्धसे मांगता हूं। आप सांचे पिता हो, मेरी रक्षा कीजे मरनेसे प्रथम, तब पुत्रको मोद होवेगा। जब महाराजकी कृपा होवेगी तब मैं ब्रह्मानन्द बागका मेवा खाऊंगा सदा। जहां रसिक सन्त अनन्त विहंग रंगीले हैं, तिनके साथ उस रसको चाखूंगा। उस बागमें एकरस महामोदमय मेंह बरसता है, फूल फल सदाई रहता है। अकथ अति दुर्लभ बाग है। वहां मलीनताका गन्ध नहीं है। ऐसे बागमें बिना पूर्ण कृपा नहीं पहुंच सकता है चाहे कोई होय। हे प्रभो ! उस बाटिकाकी सैर शीघ्र कराइए, मन तरसता है ॥ ५ ॥

और यह मनुष्य तनु महाराजने अपने मिलनेका शस्त्र बनाया है, जैसे कपड़ा बुननेका हथियार तुरकन्धो अरु नाल बनाया

है। जिस कार्यके अर्थ जौन हथियार बनाया है वही कार्य करे तब उसको शोभा है। जो बड़े कार्य्य हथियार तुरकन्वी नाल.दिको जलाय दालरौंध खाय तो बड़ी मूर्खता है। ऐसे ही प्रभु प्राप्तिवाला तन विषयमें नष्ट करि डारे तो महा अनर्थ है॥ ६॥

और मनुष्य तनमें महाराज बड़ी बुद्धि दोनी है, जिसमें लगे सोई कार्य करे। ताते परमेश्वरमें लगिके आपको कृतार्थ कर लेवे। सांची मति यही है। सब सन्तोंने प्रभुको मनुष्य तन वाली मति से पाया है। ऐसा तनु पायके जिसने न पाया सो पशु पूजित है॥ ७॥

और जो पुरुष विषयको स्वाद सहित चाखता है, सत्य मानि के तिनको संगति तथा वचन जिज्ञासुको अति निषेध है। वचन सुनिके पाप होगा। पशुनकी संगति भली। उनकी संगतिसे लाभ नहीं तो हानि भी नहीं है॥ ८॥

और जब जीव जागृतमें प्रभु स्मरण चित्तसे करता है तब स्वप्नमें भी उसको सन्तोंका दर्शन, सत्संग शुभ सम्बन्ध होता है, ब्रह्म निरूपणसे वासना क्षय होती है, जागना सोवना सम है॥ ६॥

और गुरुमुखोंने अपने मनको सुकृत रूप बना लिया है। जो कुछ उनसे होता है सो सुकृतिसार होता है। परम प्रेम पुण्य उनके हृदयके भीतर बाहर बढ़ता जाता है। विमुखनको अधर्म बढ़ता जाता है। मनमुख सदा दुःख भोगेंगे, गुरुमुख मोद पावेंगे। प्रभुकी नीति ऐसी ही चली आती है॥ १०॥

और छ पदार्थ करके जीव दुःखी हैं। मायाको चाह करिके तथा नारी २ ऐसे ही रसीले भोजन ३ वस्त्र ४ सुन्दर रूप ५ प्रभुता ६। इन सबकी चाह महा मलीन दाह प्रद है॥ ११॥

और विरक्त फकीर होयके जो राजसी जीवोंसे चाह रखते हैं, मोहताज होते हैं सो उसका मुँह परलोकमें परमेश्वर काला करते हैं और कहते हैं कि पराधीन जीवोंका तू मोहताज काहेको भया था, मेरे विरुदको तूने लजाया और लघुता किया॥ १२॥

और जो मनुष्य मनुष्यकी आशा करता है तो उसको परमेश्वर कहता है—"रे दुष्ट! मैं सदा तेरा अङ्ग सङ्गी हूं और तेरे हालको और दुःख सुखको जानता हूं और सब प्रकार समर्थ हूं और सब पदार्थ तुझको दिया है। परन्तु तू कृतघ्नी है, कुछ नहीं समझता है, औरोंकी आशा करता है, इसका फल नरकमें दुःख भोगेगा तब पछतायगा॥ १३॥

और जो मनुष्य राजोंके दास जाय होते हैं, मायाके अर्थ अपना सिर बेंचते हैं, तिनको प्रभु ऐसा कहता है—अरे नीच! मैं तेरे ताईं गर्भमें रक्षाकी, महा सङ्कटसे छुड़ायके उत्पन्न किया सो तू सब भूलके औरोंसे प्रीति करने लगा। शर्म सब त्याग दिया। स्वांस मेरे लिखाए लेता है, रिज्क मेरे दिये खाता है, दास औरका होता है, मारा जायगा, भजन करारको याद कर, सदा इसीमें निरय आंचसे बचेगा।" ॥ १४॥

और यह जीव जब किसीका भला चाहता है, दया करि कुछ देता है तो प्रथमे अपना हित भलाई करता है। किसीको मीठे

वचन करिके प्रसन्न करता है सो प्रथमे अपने हृदयको शीतल करता है। ताते सब भांति शुभ चाहै, अशुभ न चाहै, छलका फल छल मिलेगा ॥१५॥

और माया जीवोंको मिलती है, तिसको छिपाय राखते हैं, उसका आनन्द नहीं लेते प्रभु निमित्त लगायके। जैसे धर्मज्ञ राजाको कोई कैद कर राखै तो बड़ा पाप है, ऐसही धनको कैद किये महापाप है। न्यायी राजासे तथा मायासे बहुत शुभ कार्य्य सिद्ध होते हैं, ताते उनको कैद न करै॥ १६ ॥

और सन्तोंके पास धन आता है तो प्रभु सम्बन्धमें लगायके उसको कैदसे छोड़ावते हैं, उसका चमत्कार देखावते हैं ॥ १७ ॥

और सन्त जनोंने सब त्यागिके एक परमेश्वरको अङ्गीकार किया है, जाते सुखदायक परमेश्वर ही को जानते हैं, प्रभु भी अधिक प्रेम उन्हींसे करता है। परस्पर रङ्ग रसमें रंगे हैं, अकथ कथा है॥ १८ ॥

और जिन पुरुषोंने सत विचार किया है और वही विचार रूपी दीपक भीतर प्रकाश किया है, तिनके मन मन्दिरसे तस्कर, तम दोनों दूर हो गए हैं। प्रभु आश्रय समेत पुरुषार्थ करके मन मायाकी उपाधि अपने हृदयसे निकाल दिया है। उनसे परमेश्वरसे अभेद है, उनके सब कर्म परमेश्वर प्रधान हैं ॥ १६ ॥

और सन्त और श्रीराम परस्पर मिले रहते हैं, हंसते बोलते हैं सब समयमें, दोऊ एक रूप आपुसमें भेदी हैं, तीसरेको गति वहाँ नहीं है ॥२०॥

और कोई बादशाह सन्तके दर्शनको गया। उनकी अनूठी वार्ता सुनिके प्रसन्न हुआ। पीछे विनती करी—"कुछ सेवा का हुक्म करिये।" सन्त बोले—"मक्खी मेरे मुखपर बैठिके दुःख देती है, तिसको मना करि दे।" तब बादशाहने कहा—मेरा हुक्म मक्खी नहीं मानती हैं।" सन्त बोले—"जब तुच्छ जीवपर तेरी आज्ञा नहीं तब तू क्या सेवा करेगा ? हम उस प्रभुके हैं जिसकी आज्ञा चराचर मानता है। वही मेरा मोदप्रद है।" ॥ २१ ॥

और किसी बादशाहने सातों विलायत जीता। फिर आठवें पर चढ़ाईकी। तब आठवें बादशाहने उपदेश कहके भेजा—"तू बाहरके रिपुको जीतता फिरता है और दाढ़ी तेरी तुझको हंसिके जीत रही है और कहती है कि मेरा डेरा तेरे ऊपर आय पड़ा है, तू चेतता नहीं, ग़ाफ़िल पड़ा रहता है ? हे बादशाह ! अब भी चेत जाओ, नहीं तो महा कष्ट पावेगा, दाढ़ी सदा सफेद होती जाती है।" यह सुनिके बादशाह खुश हो गया। समझ लिया कि उपदेश सच्चा उसने किया है, झूठी सम्पत्तिमें वृथा हम उरझि रहे हैं, यह विचारिके सब त्याग दिया ॥ २२ ॥

और जो परमेश्वरके सन्त हैं वे प्रभुका भाव अधिक राखते हैं। काहेते कि मन तो महान खोटा है, प्रभु बेपरवाह है, मेरे सों जो बुरा कर्म हो जाय तो मैं बड़ा डरता हूं कि प्रभु हमसे नाराज़ न हो जाय, जो डरते हैं उनसे नीचाचरण नहीं होता है, तिसपर भी डरते रहते हैं कि देखिये महाराज हमपर रीझता है कि

नहीं, सुकृति दुष्कृति होजाती है, ताते डरते हैं, अहंकार करतूतिका नहीं करते हैं, विनती करते रहते हैं कि हे प्रभु! मेरी तरफ देखिके शुभाशुभका लेखा न करना। अपनी करुणाकी ओर निहारना, हम भूलनिहारे हैं, आप रक्षक हैं। ऐसी मति रखनेवाला कृतार्थ हो जाता है॥ २३॥

और किसी साधुसे साधुने जायके पूछा—शास्त्र, संतके वचन बार बार सुनते हैं, समझते हैं, पर हृदयमें असर नहीं नहीं करता, तिसका क्या हेतु है? कृपा करके कहो।" संत बोले—"इसके तीन उत्तर हैं, सुनो। प्रथमे तो मोह, मद, मार मनोराज-रूपी प्रबल रोग इसके भीतर हैं। तिस ही सम्बन्धसे संत वचन-रूपी औषधि असर नहीं करती है। जैसे फरद रोग रुजनमें नीचा है, उसमें औषधि भीतर रहने नहीं पाती, उकलेद हो जाता है, विना भीतर रहे गुण कैसे करे! तैसे ही मानादिक रोगसे वचन प्रवेश नहीं करता। दूसरा उत्तर सुनो। मन मति सदा आधि व्याधि उपाधि रूप तीनों तापसे तापित है। तामें आधि मनकी पीड़ा, व्याधि शरीरका रोग, उपाधि व्यवहार धंधा, इन तीनों तापोंसे दुःखी चिन्ता ग्रसित रहता है। ताते सावधान होयके सुने तब कृतार्थ होय। तीसरा उत्तर यह है। जो सुनता है तिसको भीतरसे काढ़नेकी इच्छा करता है आपको बुद्धिमान कहावनेको, औरको उपदेश करनेको, ताते पदार्थका स्वाद नहीं आवता है॥ २४॥

और कोई संत श्रीरामसे प्रार्थना करता था—"हे पूर्ण पर-

मेश्वर ! आप मुझे दर्शन दीजिये।" बार वार कहै तव व्योम-वाणी भई कि "सब संसार तेरे सम दर्शन मांगता है परन्तु विना सर्व समर्पण किये वातोंसे दर्शन दुर्लभ है। झूठी विनतीसे क्या होता है।" ॥ २५ ॥

और किसी साधुसे साधुने पूछा कि परमेश्वरके दर्शनका कैसा महात्म्य है ? संतने उत्तर दिया—"जैसा पदार्थ है, तैसा तिसका दर्शन है, प्रभुका दर्शन महा दुर्लभ है, कोटिन शीश तृण सम तथा त्रिलोकीकी विभूति प्रभुपर वार दिया है तव बड़े भाग्य से श्रीराम सुख धामका दर्शन पाया है। जिन संतोंके पास लौकिक पदार्थ नहीं, उन्होंने केवल शरीर अपना अर्पण किया है, कौड़ीसे कम मानिके, विना शरीरका अभिमान छूटे कदाचित परब्रम्हकी प्राप्ति न होवेगी ॥ २६ ॥

और एक सांचे सन्त दो चार मनुष्योंके साथ मिलके वनमें जाते थे। तहां वहुतसा स्वर्ण पाया। उसके साथ एक कागज़पर प्रभुका नाम लिखा था। तव उस सन्तने बांटे नाम (वाला का-गज़) लिया, स्वर्ण उन सबको दिया। जब रात्रिमें सोये तव महाराजने दर्शन देके कहा—"तूने हमारे नामपर बड़ी प्रीति की, ताते अति प्यारा जानिके दर्शन मैंने दिया। सदा मेरा समीपी तू रहेगा, तुझे बधाई है ॥ २७ ॥

और जब मायावान साथ मिलिये तब अति अचाही होयके मिलिये। इस ही में मोद है। काहेते जो मायाधारी मायाको सत्य मानते हैं। उनके सम्बन्धसे इसके मनमें भी सचाई समा

जायगी, तातें उन संसारियोंसे मिलना, तब अपना रंग लगावना, उनको तुच्छ जानना, तब ही रंग कढ़ेगा ॥ २८ ॥

संतोसे मिलना, तब दीन अधीन होयके मिलना, तब उनका धन मिलता है। सेवकाई नम्रताई विना प्रभु धन संत नहीं देते हैं। जैसे जल नीची ठौरसे जाता है, जैसे बछरू नम्र देखि माता पय पिआता है, ऐसे ही संत श्रीराम भक्त द्रवते हैं ॥२६॥

और जिन पुरुषोंने सन्तोंकी प्रसन्नता लीनी है तिन्होंने सब सृष्टिकी प्रसन्नता लीन्ही है। जैसे दूज तीजादि की ज्योति पूर्ण-मासीसे मिलती है, सन्त प्रभु एक ही हैं ॥ ३० ॥

सन्तजन प्रभुके खजाञ्ची हैं। जैसे संसारी मनुष्योंके खजा-ञ्चीके हाथ कुञ्जी होती है, तैसा ही समझना। पर इतना भेद है वे परतन्त्र हैं और सन्त प्रभुकी तरफसें स्वतन्त्र है, जो चाहे सो करें, मालिक हैं ॥ ३१ ॥

और जितने प्रभुके जीव हैं तिनका परस्पर नाता है, जाते प्रभु सबका पिता है, याही ते निर्विरोध रहना चाहिये, और सब नाते झूठ हैं ॥ ३२ ॥

और कोई साधु रात्रिभर खड़ा होयके प्रभुका विशेष स्मरण करते रहे, दिन भर व्रत राखे, याही भांति अपना जन्म व्यतीत किया। एक दिन एक ने पूछा कि तुम रात्रिभर चोरके भयसे जागते हो। तब सन्तने कहा—चोर मन है, सो मेरे पास है, उसको कहींसे आवना नहीं है। जो हम सो रहे तो वह मेरा भजन रूपी धन हरि लेवे, ताते भूख-प्यास नङ्गापन जाग्रन, यह

तीन खण्ड इसको देता हूं. जो सुस्ती करो तो यह ठग मुझको खैंच डारे किसी नीच ठौरमें, ताते सावधान रहता हूं ॥ ३३ ॥

किसी सन्तने कोई महात्मासे पूछा कि परमेश्वर और जीव का रूप कहें। तब उत्तर उनने दिया कि परमेश्वरका रूप सर्वेश्वरता, सर्वज्ञतादिक, दीनदयालुतादिक अनेक गुणोंका स्थान है, यही रूप है। जीवका रूप प्रभु सेवा अनुकूलता, कृतज्ञादिक स्वरूप है ॥ ३४ ॥

सब सृष्टि उत्पत्ति होती है. एक सन्त उत्पन्न नहीं होते, जाते परब्रह्मका निवास उनमें है। जैसे परमेश्वर नित्य हैं वैसे सन्त भी नित्य हैं दोनों अभेद दोनों गुप्त प्रगट होते हैं, संशय न करना, विचारना ॥ ३५ ॥

और प्रीतिमान वह हैं जो बुरा संकल्प होने न देवे, उठते ही समय दूर करे संकल्प फूल है, फल उसका कर्म है, फूल तोड़े से फल नहीं लगता है, ताते संकल्प न उठने देवे ॥ ३६ ॥

और वचन यह है---मनकी इन्द्रियाँ सेना है। इन्द्रियों द्वारा मन जीवोंको निज स्वरूपसे गिरा देता है। ताते विवेकी जन प्रथम विचारकी चौकी इन्द्रियोंपर रखते हैं और करन उनको अपने वश कर लेते हैं। इन्द्रिय मनका कहना नहीं मानती। तब वह भी शिथिल होयके मृतक तुल्य होता है ॥ ३७ ॥

और गुरुमुख मनमुख भोग दोनों भोगते हैं, पर गुरुमुखमें अमृत और मनमुखमें विष हो जाता है। दोष पात्रका है, वस्तु का नहीं। गुरुमुख भोग करिके प्रभु प्रीति करते हैं, मनमुख

अशुभाचरण करते हैं। एक ही घासको गदहे और हिरन दोनों खाते हैं हरिनको कस्तूरी और गदहेको दुर्गन्ध हो जाता है ॥ ३८ ॥

और भोग सन्त और असन्त दोनों भोगते हैं। खान, पान वस्त्र, रूप संसारी तृष्णा समेत, सन्त निराशा समेत भोगते हैं। शुभाशुभ हानि लाभमें ग्रहण त्याग बुद्धि नहीं करते हैं। समता रूप योग धारे हैं। प्रारब्धानुसार दुःख सुख सब समझते हैं. ॥ ३९ ॥

और नारी-रति वाले पुरुषका लोक परलोक दोनों नष्ट हो जाता है। जैसे प्रबल ठगसम्बन्धसे सब कुछ हरा जाता है, ताते वामा और उनके सङ्गी दोनोंका अति त्याग करना उचित है. ॥ ४० ॥

और जब जीव विषय त्याग किया चाहता है, तब तन कहता है, "आज भोग भोग लेवे, कलसे त्याग करेंगे सही, जाते मनको विषय मीठे लगते हैं छाड़ नहीं सकता।" सन्त उत्तर देते हैं—कलका वादा सो माने जिसका शरीर छनभङ्गुर न जानि परै, ताते आज ही करेंगे। दूजा उत्तर मनको यो देते हैं—आज तो बुराईको बुरा जानते हैं कलह कहीं उसीमें परचि न जाय, ताते आज ही करना सलाह है, देर न करो ॥ ४१ ॥

और एक ज्वरवाला रोगी कहलाता है, जिसमें तीन ताप सदा व्यापि रहे हैं, ऐसे गृहासक्त मनुष्यको क्या कहिये ? शरीर ज्वरकी औषधि वैद्य देते हैं। इस मानसी महाज्वरकी अवषधि सन्त देते हैं। कहते हैं, सब कुछ परमेश्वर इच्छासे जान मान

करके अहंकार विकारको नाश करो, इसहो ते शीतल निरोग हृदय हो जायगा, दूजो औषधि नहीं है ॥ ४२ ॥

और जिसकी प्रीति अरज सदा सीतावरमें लग रही, सदा तिनको सम्पूर्ण कामना सिद्ध होगा, जो अपने रिपुओं पर सदा नालिशी रहैगा, तिसका न्याय अवश्य ही होगा। जो नदी सदा चली जाती है सो अवश्य ही सागरमें मिलती है, पुकार बड़ी चीज है ॥ ४३ ॥

जो पुरुष एकान्तमें बैठिके महाराजसे विनय करता है तब अखण्ड आँसू नेत्रोंसे जारी होता है। और जब वृथा एक स्वाँस न जाय तब प्रेमको अवधि है। सबकी सब भांति भला चाहना सदा यह भक्तिको अवधि है ॥ ४४ ॥

और जिज्ञासुके दस लक्षण हैं—दया १ नम्रता २ सन्तस्नेह उदारता ४ अदम्भता ५ असङ्गता ६ अकामना ७ विशद वैराग्य ८ शान्ति ९ एकान्तवास करके रोवना, प्रभुको रिझावना १० यह दस चिन्ह साँचे सन्तनका है। वेषधारीमें एक भी पाया नहीं जाता है। जौलों सन्त जनोंकी रीति नहीं धारण करता है तौलों परम पुरुषकी झांकी निवारण नहीं हो सकती है ॥ ४५ ॥

और जैसे शरीर अभ्यास करिके आपको शरीर मान लिया है। तैसे ही चिन्मात्र प्रभुके स्वरूपका और आपके स्वरूपका सदा अभ्यास करिके सच्चिदानन्द मान लेगा। वह झूठ अभ्यास था यह साँच शुद्ध आँच बिना है। युवावस्था आये बालकपन मिट-

जाता है, वृद्धता आये जवानी नष्ट होती है ऐसे ही जड़ चेतनका अभ्यास है ॥ ४६ ॥

संसाररूपी एक ताल प्रभुने बनाया है, तिसमें माया कीच है चेतन कमल है, मन भेक है, मन भेकका माया साथ सनेह है प्रभु रूप कमलका तिसके मनमें कुछ ज्ञान नहीं है ॥ ४७ ॥

और सब शुभ कर्मका चोर दम्भ है; दम्भ किये शुभ नहीं होता है। जैसे अन्धेका आटा-मीठा श्वान खा जाता है उसको मालूम नहीं होता है। जैसे गऊका दूध बछरा पी जाता है तब अहीरके हाथ कुछ नहीं लगता है। तैसे दम्भीके कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ४८ ॥

और शरीरकी गति छनभङ्गुर रुईके गाले सम पोला है और दीपक नाईं सांस। दीपक बुझ जाता है। जिसको इस छन भङ्गुरसे स्नेह नहीं सोई तीक्ष्ण मति है। बिजलीके प्रकाश करिके मार्ग देखि लेवे, नगर पहुंच जाय सो भी आश्चार्य नहीं। परन्तु छनभङ्गुर शरीरसे श्रीमहाराजको पाजाना महा आश्चर्य है ॥ ४९ ॥

और दृश्य पदार्थ सब झूठे हैं। जैसे स्वप्नके पदार्थ अनहोते दृष्टि आवते हैं, जाग्रितमें झूठे हैं। ऐसे ही बोध उदय भये जागृत भी झूठ हो जाता है। भ्रम मात्र दीखता है। तीव्र साधन किये जगतका अभाव हो जाता है। कभी भासता भी है तो मृग तृष्णा सम समझता है ॥ ५० ॥

किसी साधुकी सेवा किसीने बहुत करी। तब सन्त दयालु होयके प्रसन्नता समेत बोले—"तुम्हें मैं महामन्त्र देता हूं जिस

करिके कृतार्थ होवेगा, दृढ़ करिके धारण करो। यह मन्त्र है—'श्रीराम विना सहायक संसारमें दूसरा कोई नहीं है। ताते प्रभु ही से उचित है प्रीति करना। मन स्वाँस दोनों अमोलक मणि तेरे पास हैं। सो तू भूलिके प्रभुके विना औरके हाथ मत बेचि डार उनसे दाम कुछ न पावैगा, केवल क्लेशही हाथ लगेगा। ताते दोनों पदार्थके गाहक यथार्थ परमेश्वर हैं हो। जो श्रीरामके हाथ बेंचेगा तो परमानन्द अमन्द द्वन्द्व रहित कीमत मिलेगो। सावधानता समेत काम करना ॥ ५१ ॥

और कोई साधु अपने सत्गुरुसे अर्ज किया कि "मेरा मन रामत करनेको चलता है; जो हुक्म होय।" तब श्रीगुरुदेवजी बोले "हे सौम्य? अपने हृदयसे अलग रामत करना जिज्ञासुको उचित नहीं फल दाय क भी नहीं है। दृष्टान्त है—जैसे ऊख घासवाले पात्र ही में रस रूप गन्ना हो गया है, कहीं रामत करने नहीं गया। ताते हृदयमें रामत करना उचित है। जीव दशासे रामत करो ईश दया प्राप्तिके अर्थ ॥ ५२ ॥

और जीवोपर प्रभु निर्हेतुक दयालु है मातासे अधिक। ताते जो कोई पापी देखि पड़े तिसपर ग्लानि न करे। जाने कि महाराज पतित पावन हैं। को जाने सुकृतिनसे प्रथम उसीको तारि देवें ॥ ५३ ॥

और फूल काँटा एक ही वृक्षसे उत्पन्न होते हैं, तैसे गुण अवगुणका नियन्ता प्रभु है। दोनों प्रकारके मनुष्य हैं, गुणी अवगुणी, जिसको जैसा चाहै करि डारे है, परमेश्वर स्वतन्त्र कर्म-काल

स्वभावादि सब पराधीन हैं, चाहे गुणको अवगुण करैं चाहैं अवगुणको गुण करि डारै। अहंकारी लेखा करावनेवालों पर यह दण्ड होता है, अहंकारी की खेप भारी पड़ती है, ताते सत्गुरु परमेश्वर तथा जीव मात्रसे अभिमान करना महा निन्द्य हैं, नम्रता सार हैं ॥ ५४ ॥

और पिता पुत्र दोनों नहाने चले। तब राहमें बैलोंको रहट साथ चलते देखकर पुत्र प्रश्न करता भया—"हे पिताजो यह बरद विश्राम करिके बैठ क्यों नहीं जाते? दिन भर फिरते हैं।" पिताने उत्तर दिया—"हे पुत्र! बरद तो बहुत चाहते हैं बिश्राम करना परन्तु परवश हैं, मालिकके हुक्म विना बैठि नहीं सकते। ऐसही सकल जीव प्रभु आधीन हैं, अपने मनके अनुकुल कुछ करि नहीं सकते न थे, हुए हैं, ताते सन्त सदा शोतल रहते हैं, हुक्म विचारिके ॥ ५५ ॥

और वचन यह है। जैसी जैसो बूझ है तैसी तैसो दशा है। जैसे बालककी तुच्छ बूझ है, तैसी उसकी दशा नोच है, थोड़ीही बातपर रोवता है और सन्तोंकी बूझ बड़ी है, तैसी ही दशा भी ऊंचो है, संसारो पदार्थ आये-गये सममति आनन्दमय रहते हैं और उनके संयोगियोंको भो ऊंचो अवस्था होती है। जैसे चन्दन वृक्ष सम्बन्धसे सब वन चन्दनमय हो जाता है ॥ ५६ ॥

और सन्तोंकी सङ्गति फलदायक तभी होती हैं जब युक्ति समेत होय। प्रभुका सङ्केत ऐसा ही है ॥ ५७ ॥

और ज्यों ज्यों सन्तोंकी संगति करेगा त्यों त्यों जगतसे उप-राम होता जायगा। स्थूल ब्रह्मलोकतक त्यागिके सूक्ष्म चैतन्य घनको प्राप्त होगा। यही रीतिसे सन्तोंको परमपद प्राप्त होता है। ॥ ५८ ॥

और कामादिक सङ्गसे जीव सब पाप करते हैं। जब प्रभुकी दया होती है तब सन्तोंका समागम होता है तिसते सत विचार पायके कामादिकको जीत लेते हैं, उनका खेत नष्ट नहीं होता ॥ ५९ ॥

और एक संतने अपने सत्संगियोंसे पूछा कि तुमको स्वप्नेकी ठिकरी अच्छी लगती है कि जागृतकी अशरफ़ी। तब वे सब बोले—"स्वामीजी! एक तो स्वप्न, तिसकी ठिकरी, किसको भावेगी? एकतो जागृत, फिर अशरफ़ी, सबको भावैगी।" तब संत बोले—"तुम झूठ कहते हो। स्वप्नेकी सब मायाके पदार्थ नाशवान, सो तुम सब लोग उसीसे स्नेह करते हो। जागृतकी अशरफ़ी श्रीराम स्वरूप स्मरण है, तिनको तुम त्यागि दिया है, ताते तुम झूठे हो" ॥६०॥

चाहे जैसा पापी होय परन्तु प्रभुसे निराश न होजाय कि हमारा पाप क्षमा न होगा, जाते श्रीप्रभुके आगे पापोंका कुछ बल नहीं है। जिस समय सांचा वैराग्य उत्पन्न होगा, उसी कालमें महाराज प्रीति दैके सब पाप उसका क्षमा करि डारेंगे, विलम्ब न लगेगा। जैसे सूर्यके उदय भये तम नष्ट हो जाता है, संशय नहीं ॥ ६१ ॥

और परमेश्वर कहता है—"हे मनुष्य! तू मेरेसे विमुख है, तव भी मैं तेरी सब भांति रक्षा करता आया हूं। जो तू हमसे स्नेह करेगा तव हम तुझको अविनाशी प्रमोद देवेंगे, जो सुख करण-गोचर नहीं हो सकता, नित्य धाममें वास देवेंगे, जहां खटका-खेद कोई नहीं है॥ ६२॥

और शुभ कर्म सम सहायक, निज पुरुषार्थ सम सुख दायक; बुरे स्वभाव सम बाधक, प्रभु सम मीत लायक, श्रीगुरु सम रक्षक अमायक, दूसरा कोई नहीं है॥ ६३॥

और पाप पुण्य दोनों कर्मों को थोड़ा न जाने,- विष अमृत थोड़ाही मृत्यु अमरता देते हैं। जहांतक बने हित करे, मोक्ष दायक है॥ ६४॥

और मृतक मनुष्य अपना काम आप नहीं कर सकता है, ऐसेही नारीनेहो अपना परलोक बना नहीं सकता है, उसको दण्ड करके संत शुभाचरण करावते हैं। गृही शक्तिहीन है, नीच दशा सहित है, धनाभिमान राखते हैं॥ ६५॥

और जैसे श्वान कच्चा अन्न खायके ज्यों का त्यों वमन करि डारता है, वह अन्न देखने मात्र है, परन्तु कामका नहीं। ऐसही संसारी लोग सोग ग्रसित जीते दृष्टि आवते हैं पर मृतक हैं, हरि गुरु संत परलोकके कामके नहीं; परमार्थ शक्ति हीन हैं। ६६।

और एक संत गृहस्थ थे परिवार सम्पन्न। जब वे संत शरीर त्यागने लगे तब अपनी सब सम्पत्ति प्रभु अर्थ उठाय दिया तब संसारी लोगोंने कहा—"जो आपके पुत्रादिक परिवार थे उनको

कुछ नहीं दिया"। तब संतने उत्तर दिया—"जो प्रभु अनुकूल होवेंगे तो सब सुख इनको प्रभुही देवेगा। जो विमुख भये तो मेरे दिये भी सन्तुष्ट न होवेंगे, ताते हमने नहीं दिया"॥ ६७॥

और संतोंके वचनका माहात्म्य सोई जानता है जो प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छा रखता है, दूसरा मनुष्य जानि नहीं सकता संतोंके स्वरूपको, तिसमें दृष्टान्त दो हैं—जिसको रोग दूर करनेकी इच्छा नहीं सो वैद्यसे प्रीति काहेको करेगा? व्यभिचारिणी नारि पतिव्रतासे स्नेह काहेको करेगी? तैसेही प्रभु बिमुख संतोंसे स्नेह न करेंगे॥ ६८॥

और प्रभु परेश सेवा विना अन्य मय देवतासे मोक्ष नहीं होगा। जैसे रैनिका तम दीपकसे दूर न होगा, जैसे स्वप्नमें सीखी विद्या प्राप्त न होगी, माटीकी धेनु दूहे पय न मिलेगा, ऐसेही प्रभु भजन विना मोक्ष न मिलेगा कबहूं॥ ६९॥

और किसी संतसे साधुने चौरासीका कष्ट पूछा। तब उस संतने आगे उसको बैठायके शरीरको त्याग करदिया, तब उसने समझा कि महा दुःख है॥ ७०॥

और जो जन परमेश्वरका सम्बन्ध मानि सब जीवोंसे सब प्रकार प्रीति करते हैं तिन पर प्रभु प्रसन्न होता है, जैसे वरातीके सत्कारसे दूलह प्रसन्न होता है, ताते सबसे स्नेह करे॥ ७१॥

और मन रूपी चन्द्रमा है। बुरे स्वभाव राहु-केतु हैं। विना उनके छूटे ज्ञान प्रकाश सदा न रहेगा॥ ७२॥

और जो कोई बुराई करे, उसके साथ बुराई न करै, भलाई

करने हारेके साथ भलाई करे। जो आपके साथ प्रीति न करे तिसके साथ प्रीति करनेकी चाह न करे, प्रीति वालेसे प्रीति करे, जो न करे तो किसी जन्ममें वह माशूक होवेगा और वह आशिक़ होयकर तरसेगा, रोवेगा वह बदला लेवेगा, ॥ ७३ ॥

और एक शिष्य श्रीगुरु समीप हाथ जोड़के खड़ा रहा, तब आज्ञा भई क्या मांगता है? शिष्यने कहा—"शान्तिदान मांगता हूं।" श्रीगुरु बोले—"तू तो गुरुकी गादी लिया चाहता है।" और शिष्य शान्ति दान मांगता भया—"हे गुरो! मुझे गादीकी चाह नहीं है, शान्ति मिले।" श्रीगुरु बोले—"हे शिष्य! तन मन धन समर्पण करके जब सेवा करेगा तब शान्ति प्राप्त होगी। विना सेवा किये न अबतक शान्ति किसीको प्राप्त भई है न होवेगी, ताते सेवासे सब सुख होवेगा बातोंसे नहीं" ॥७४॥

और वचन। सब मनुष्योंमें प्रभु—भजन निरत श्रेष्ठ है॥ जैसे देवताओं में विष्णु, गिरि, नदियोंमें सुमेर, सागर श्रेष्ठ हैं ॥७५॥

और गुण अवगुण दोनों एक प्रभु इच्छासे उत्पन्न हुये हैं, जैसे तम, प्रकाश दीपकसे। सो बहुत कार्य प्रकाश में राखे हैं, बहुत काजल में। सो जिज्ञासु यह विचारके, विधि निषेध त्यागि के प्रभु परायण भये हैं ॥७६॥

और स्वप्न की सृष्टि स्वप्न में सत्य भासती है, जागृत में नहीं। ऐसही अनन्त ब्रह्माण्डदृष्टि आवे तब भी कुछ है नहीं, स्वप्न सम समझना। केवल ब्रह्मसत्ता ही विचारना ॥७७॥

और किसी गृहीने सन्तकी सेवा कीनी। तव सन्त प्रसन्न होके बोले—"तेरा सहायक प्रभु विना कोई नहीं है, यह मन्त्र सदा मनमें धारण कर लेवो।" तव गृही बोला—"मेरे परिवार वड़े स्नेही हैं ताते कृपा करिके इस जगत की झुठाई आँखों से देखाय दीजिये तव दृढ़ प्रतीत होय, वातोंके कहे मन न मानेगा।" सन्त जी ने कहा—"तू इसका स्वरूप प्रत्यक्ष देखिले तव प्रतीत करना। जो तेरे को वहुत प्यार करता होय तिसके साथ परीक्षा करिके देखि ले।" उसने कहा—"नारी हमसे अति प्यार करती है और हम सव परिवार से भिन्न हैं।" तव सन्तने कहा—"पांच सात दिन तू रोगी वन जाय, खाना-पीना कम कर दे। फिर एक दिन नेत्र वन्द कर ले, नारी के वोलाये वोलना नहीं, मृतक सम हो जाना, भीतर सचेत रहना, तव तुझको नारी की रीति-प्रीति जानि पड़ेगा।" उस पुरुषने घर जायके सोई आचरण किया। जव नारी वोलाय के हारी, तव मुर्दा जानि के विचारने लगी—'जो यह मर गया तो हमको पांच चार दिन रोटी न मिलेगी, ताते पुष्ट पकान्न खाय लेवें और मोटे वस्त्र पहिन लेवें जिसमें अच्छी चीज़ मलिन न होजाय ज़मीनमें लोटनेसे।' और वाहर की सव चीज़ कोठरीमें वन्द करि ताला लगाय तव सास-ससुरके पास रुदन करती हुई गई। पतिके महा संकटका हाल कहा। वे दोनों रोते हुए तथा और सम्बन्धी दौड़े। जव यहां आवें तव वह पुरुष सचेतता अपनी देखाय दीनी। तव कुछ देरमें उठिके संतके पास गया। जायके

सब हाल कह दिया। संत सुनिके बोले-"अब तुझको दृढ़ निश्चय भया?" उसने कहा—"भली भांति।" तब महात्माने उसको भली भांति शिक्षा देकरिके घर विदा किया। वह पुरुष रहता तो घरमें भया परन्तु अपना स्नेही परमेश्वरही को जानता भया। संतोंकी संगतिका प्रताप सदा मनन करता भया ॥७८॥

और मन रूपी वृक्ष पर दो प्रकारके फल लगते हैं। एक शुभ, दूजा अशुभ। जो केवल शुभही फलकी इच्छा होय तो वृक्ष पर रक्षक बहुत सावधान राखे जो अशुभ फल लगने न देवे। रक्षक बहुत सावधान होय, प्रभु परम सहाक होय, तब सब काम सिद्ध होय। महाराज से विमुख होयके सुख नहींपावेगा कोटिन कल्प बीत जाय ॥७९॥

और वृक्षोंमें जो फल लगता है सो जीव इच्छा करिके। जो इच्छा इसकी न होय तो निरयादिका ताप यह न भोगै, ताते उचितहै कि सदा सचेत रहिके मनमें संकल्प विकल्प फल लगने न देवे, सावधानी सहित मोक्ष होता है ॥८०॥

और अपर वृक्षोंमें छ मास में फल लगता है, मन रूपी वृक्षमें संकल्प फल और कर्म फल उसी छनमें लगता है; ताते संकल्प रोके, मन साथ समर करे, प्रभु-प्रतिकूल संबंध त्यागना उचित है॥८१॥

और जिन पुरुषोंने प्रभु भजन रूपी पुरुषार्थ किया है तिनका सुयश सदा सब लोकोंमें छाय रहा है। प्रसिद्ध श्री प्रह्लाद, ध्रुव, शुकदेवजी तथा अनन्त सन्तों की कीर्ति छाय रही है। और

पुरुषार्थहीन चौरासी में नाचते फिरते हैं, मत्स्यादि के शरीर पायके वाजारमें बिकते हैं, लोक उनके तनको भक्षण करते हैं, महा दुःख पाते हैं, ताते आलस्य त्यागिके पुरुषार्थ करो ॥८२॥

और एक गाय राहमें चली जाती थी। उसको खरने कहा कि कहां वृथा जाती है, यह खेत महा पुष्ट अन्न का है, हम तुम दोनों चरें।" यह बात सुनि गाय चरने लगी। उसी समय खेतवाला आ गया। गऊको पकरि लिया, गदहा भाग गया। गऊको पकड़ि के एकान्तमें उसने बाँधा जिसमें उसका मालिक न देखे। गऊ वहुत दुःखित भई, क्षुधा पिपासा से। तव कुछ दिन वीते मालिक छुटा के ले गया। ताते इसको दृढ़ बन्धन साथ वांधिये जिसमें रात्रिको तोराय के किसी खेतमें न पड़े। जव दिनको चरने जाय तव वली वैल साथ बाँधिके भेजे, जिसमें छूटे नहीं, धेनु उसके साथ खाने पीने न पावै। वहुत दुःखी भई। तव प्रभुसे अर्ज़ किया—"हे प्रभु! हमने कुसंगी खरका एक शब्द सुना, तिसका फल इतना दुःख भोगती हूं, जो दिन रात कुसंग करते हैं उनकी कौन गति होयगी।" धेनुकी पुकार प्रभु सुनिके दुःख दूर कर दिया ॥८३॥

और माया रूपी वन्दी खाना है, तिसमें प्रभु विमुखन को कैद कर राखा है। क़ैदीके पांवमें वेड़ी होती है, तौक़ होता है, सो गृह धंधा वेड़ी, आशा मोहादिक तौक़ हैं। क़ैदी तमाशा देखने नहीं पावते हैं, संसारी मनुष्य सत्संगसे विमुख हैं। क़ैदी को सुन्दर भोजन, शीतळ पवन नहीं मिलता, संसारियों को

प्रभु-प्रिय-वार्त्ता पवन, शांति समाधि दिव्य भोजन नहीं मिलता है। तात्पर्य उस मोदसे विमुख हैं ॥८४॥

और किसी संतसे साधुने पूछा कि संतोंका क्या रहस्य है? तब उत्तर संतने दिया—"संत सत्य लोकके वासी हैं। उस ही ठौर से आयके प्रभु प्रेमरूप वेगमपुरमें रहते हैं संतोष महल बनायके, विवेकी पुरुष परिवार हैं, शाँति नारी है तिससे मिलिके केलि करते हैं। और शुभ गुण सम्पत्ति है, प्रभु यश कथन व्यवहार है, श्री प्रभु उनका रक्षक कामकारी है। यह सब संतोंकी रीति है ॥८५॥

और एक संत सावधान होयके प्रभुसे अर्ज करता था—"हे पूर्ण कृपालु! आपने हमको वहुत शोभनीक खेप भर दीनी है, मनुष्य तन दीन्ही है, इन्द्रिय मति दीनो है, अपनी प्रीतिकी रीति संतोंके द्वारा श्रवण कराये हैं। सब बात आपने अमोलक दिये हैं। सो इस खेपका फल आपका दर्शन है। मायाका फल माया है। सो हे दीन दयालु! इस खेपके ऊपर कामादिक तस्कर भीतर रहनेवाले लूटा चाहते हैं, तिसकी रक्षा आप कीजिये, जिसमें मेरी खेप नष्ट न होय सो करें। मायाकी खेप जो तस्कर चोरा-वते हैं तिसमें साहु और व्यापारी दोनों दुःखी होते हैं। इसमें हमारी हो हानि है। आपका सर्व प्रकार परम कल्याण है। खेपके मारे जाने व वचनेमें आप सम हैं परन्तु मारे जानेसे मेरी अति हानि है। आपसे विमुख होयके नाना कुयोनि भोगनी पड़ेगी। ताते हे दीन वन्धु! मन मायासे हमारे खेपकी रक्षा करो जिसमें हम आपको प्राप्त हों।" ॥ ८६ ॥

और जितने विषय भोग प्रभुने रचे हैं, तिस करिके भक्त अभक्तकी परीक्षा हो जाती है। जो विवेक भजनके द्वारा विवेक विगत वंधनसे वचिगया सो प्रभु प्रियतम भया, जो फंसि गया सो निरयमें पड़ा, सोई अभक्त है ॥ ८७ ॥

और जीवमें प्रभु अरु माया दोनोंका सम्बन्ध पाया जाता है। परमेश्वर स्नेहसे प्रभुरूप होता है। माया चिन्तवनसे अविद्यामय होता है, ताते सत चिंतवन करे, असत भुलावे, इसीमें मोद है ॥ ८८ ॥

और सब जीवोंको सुखकी वांछा है, दुःखकी इच्छा नहीं करते। यह वज्र रोग है, सो इस रोगकी औषधि दुःख सुःखमें सम मति करना और दुःखकी चाह करनी, सुखकी इच्छा न करनी, यह मोक्षका मार्ग है ॥ ८९ ॥

और प्रभुने जो दुःख उत्पन्न किया है सो इसी राहसे जीवोंको उपदेश करता है कि यह दुःख न होता तो कोई परमेश्वरका स्मरण तथा मोक्षको प्राप्त न होता। ताते दुःखकी इच्छा करो, सुख संसारी भुलावो, परमानन्द पावो ॥ ९० ॥

और जैसे कोई ऊंचे चढ़िके पुकारे तैसे प्रभु दुःख द्वारा जीवोंको बोलावते हैं कि मेरी ओर आवो, सुख पावो। बिना रसनाके बड़ा होता है परन्तु उस शब्दको संत सुनते हैं, अपर नहीं सुनता। अरु मनमुख दुःख पावते हैं, दुःखका प्रयोजन नहीं जानते हैं ॥ ९१ ॥

और एक मनुष्य निर्धनी धनार्थ दुःखी होके नाना उद्यम

किया। जब वित्त प्राप्त न भया तब उद्यानमें जाके जलनेकी इच्छा करी। लकड़ीमें आग लगा दी और शरीर त्यागकी इच्छा करता रहा, वित्त व्यथाके कारण। तब दीनबन्धुने उसकी यह दशा देख कर गीदड़के भीतर उपदेश देनेकी शक्ति दी जिसमें मनुष्य तनु दुर्लभ इसका नाश न हो जाय। श्री प्रभु प्रेरित गीदड़ उस ठौर आके उससे कहा कि "तू यह क्या मूर्खता करता है, ऐसा न कर।" यह सुनकर उस मनुष्यने अपना दुःख कहा। तब उसने उपदेश आरम्भ किया—"हे अज्ञानी मनुष्य! तू जानता है कि मरनेपर सुखी होंगे, सो तेरा संकल्प झूठा है। मरनेके पीछे यम-किंकर महा कष्ट भुगाकर निरयका दुःख भोगाते हैं। नाना कुयोनियोंका दुःख भोगाते हैं। अब तो तू मनुष्य है, करन, मति सहित समर्थ है, प्रभु समेत अपने रूपका ज्ञान है, शुभाशुभ जानता है, प्रारब्धानुसार भोजन पाता है; शीतल नीर पान करता है, सपरिवार शहरमें रहता है, वसनादिका सुख लेता है, मरकर दुखी होगा। हम भी तेरे सम मनुष्य थे, मायाकी तलासमें फिरते थे, प्रभु भजनसे विमुख थे, तिसका यह फल पाया है, नाना योनि भोगकर गीदड़ हुआ हूं, इस शरीरमें सबसे अधिक कष्ट पावता हूं। प्रथम तो हाथ विना मच्छड़, दंश, जूआं आदिक जन्तु उड़ा नहीं सकता। वे अति दुःख देते हैं। फ़िर भोजन, कर विना, मिट्टी मिला खाता हूं। जन्मसे लेकर शरीरका मैल हाथ बिना धारण किये हूं। और दुःख सुनो। भोजन हमारा मांस और अन्न है। सो जब मृतक भोजनार्थ ग्रामके निकट जाता हूं तब श्वान

हमको काटने दौड़ते हैं, उनके मारे खाने नहीं पाता। और अनाज तो अति दुर्लभ है। ताते मल खाकर जीता हूं और बरसातमें तो गड़हेमें सुख सहित पानी पीता हूं, ग्रीष्ममें वनकी नदी सेवता हूं, नगरमें डरके मारे नहीं जाता; शीतमें घर विना दुःख पाता हूं, क्योंकर शीत उतारूं। फिर जब ग्रीष्म ऋतु आई तब झार गारसे निकसिकर शीतल पवन नहीं ले सकता हूं, डरके मारे कि कहीं शिकारी मनुष्य या पशु व्याघ्रादिक मार न डालें। और दुःख सुनो। जब परिवार क्षुधा करके दीन होते हैं तब हमारा मन महादुःखी होता है, अपनी निर्बलता विचारि के। ताते तनु मन दोनों दुःखी रहता है। भूखसे व्याकुल नाना पदार्थ पेखता हूं, पर खाने नहीं पाता। ऐसे हो बहुत दुःख हैं, कथन कहां तक करु। और तूने दुर्लभ मनुष्य तन पाया है, बल, बुद्धि, इन्द्रिय सब समर्थ पाया है। सत्संग द्वारा प्रभुको प्राप्त भया चाहे तो हो सकता है। शरीर त्याग कर कुयोनि हमारे सम पावेगा। मनुष्य तनुकी प्रसन्नता नष्ट हो जायगी। जो मायाकी प्रसन्नता तेरे पास नहीं तो मनुष्य तनुकी प्रसन्नता तो है, तिसको मत नशावो, वानर वाला काम मत करो। वानरको जब खाज होती है तब खुजलायके घाव कर डालता है, उसीमें मर जाता है। तैसे ही मायाकीप्रीतिसे तू मनुष्य शरीर अपना नष्ट किया चाहता है। सो ऐसे सुर दुर्लभ शरीरको मत नशावो, सावधान हो जावो, सब सुखका दाता यह तनु है। ऐसा तनु पाकर श्रीराम भक्ति करके परम पद पा जाओ, बारम्बार

प्रभुका उपकार मानो जिसने यह शरीर दिया है। माया जो मिलती तो प्रभुसे विमुख हो जाता, धंधेमें फंस कर, अब सब पापोंसे मुक्त है। ताते बड़ी कृपा प्रभुकी मानकर दिन रात नाम स्मरण किया करो। नीच सङ्कल्प अपने मनसे दूर कर डालो। इसीमें भलाई है। यह बात सुन कर मनुष्य बोला—"हे श्रीगीदड़ जी! आप परम गुरु हैं। आपके उपदेश सुनिके मेरे मनसे सब चाह दूर हो गई। अब जीनेको श्रेष्ठ मानता हूं। और निर्धनताई श्रेष्ठ थी जिस करके आपका दर्शन पाया, कृतार्थ हुए। धन्यसे धन्य भये। आप प्रभु रूप ही हो। दूसरा ऐसा उपदेश संसारमें कौन कर सकेगा, यह रहस्य विचार करना।" ॥६२॥

और किसी सन्तने मायाको नारी रूपसे देखा, तो पूछा कि तेरे केश आगे पीछेके भूरे काहे हैं? तब मायाने उत्तर दिया—"सन्तोंके आगे मत्था टेकते टेकते आगेके केश भूरे भये हैं, हम सिर पटकती हैं, वे हमसे कुछ लेते नहीं, अपने प्रभुके रसमें मुदित हैं। संसारी मनुष्य मुझे चाहते हैं, मैं भागती हूं पीछेसे वे केश खींचते हैं, ताते पीछेके बाल भूरे भये हैं। सन्तोंका रहस्य अगम्य है ॥६३॥

और बीजसे वृक्ष तब होता है जब भले भूमिमें बोइये, जलसे सींचिए, बाड़ करिये, पशुसे रक्षा कीजिए। धूप सम्बन्धसे हरा होता है। जब तरु पुष्ट भया तब हाथीके बंधेसे भी खटका कुछ नहीं। ऐसा ही जीव रूपी बीज है, परमेश्वररूपी धरनी है, सन्तोंकी शिक्षा बाड़ी है, माया पशु है, वेद वाक्य जल है, प्रभु

भय धूप है। यह सब सम्बन्ध मिलता है तब व्यष्टिसे समष्टि होय तब माया दुःख देनी सुख प्रदा हो जाती है ॥६४॥

किसी साधुसे साधुने पूछा कि ज्ञान ध्यानका स्वरूप कहिये। तब सन्तने उत्तर दिया कि "ज्ञानका स्वरूप यही है। जितना प्रभु स्वरूपका बोध होय, तिसको बार बार बढ़ावे। और ध्यानका स्वरूप यह है कि जैसे परमेश्वर इसका स्मरण सदा रखता है तैसे ही इसको भी उचित है।" ॥६५॥

और कोई सन्तसे साधुने भजनका स्वरूप पूछा। तब उन्होंने सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्कामको भजन कहा। जप, तप, तीर्थ, नेम, जागरन, इन्द्रिय दमन, स्वल्पभोजन, आदि सब भजन है, जिससे प्रभु रीझे सो स्मरण है, अशुभ त्यागना भी भजन है ॥६६॥

और संसारमें मायाके चाहनेवाले सब दुःखी हैं। एक अच ही सुखी है। मायाकी रक्षामें जन्म विगाड़ते हैं तौ भी नहीं रहती, तब रोते हैं कि हाय! हमने मायाके राखनेकी रीति नहीं जानी ताते चलीगई। बड़े मूर्ख हैं। अपनी चतुराईके मारे प्रभु-की इच्छा और प्रारब्ध दोनोंको भुला दिया है। हवाई आकाशमें तब तक ठहरती है जब तक उसमें बारूद होता है, बारूद बिना गिर पड़ती है। ऐसे ही प्रारब्ध बिना पदार्थ कोई नहीं रह जाता। ताते सोच चिन्ता करना व्यर्थ है ॥६७॥

और जैसे रैनिको दिन नष्टकर डालता है और दिनको रैनि नष्ट कर डालती है जैसे दृश्य पदार्थको काल नष्ट कर डालता है तैसे ही प्रारब्ध सुख दुःखमें कारण है ॥६८॥

और जिनको सन्त समागम रीति समेत भया है- तिनमें पांच लक्षण अवश्य होते हैं। प्रथमे तो उनके सुमनमें गुरु शब्दका प्रकाश होता है। दूसरे अपने जीतहारके स्वरूपको वह यथार्थ जानते हैं। तीसरे मन मायाको अपना अति वैरी जानते हैं। चौथे श्वांस श्वांस नाम स्मरण करते हैं। पांचवां लाभ मनुष्य जन्म सपरिवार सफल कर लेते हैं ॥९९॥

और जो कुछ सुकृत कीजिए तिसका फल शीघ्र न मांगिये। इसमें दो अवगुण कढेगा। एक तो अधैर्य्यता, दूसरे कर्म करनेका अहंकार होता है। यह वात दोनों प्रभुको प्रिय नहीं लगती। ताते त्यागना उचित है। आप प्रभु भी धैर्य्य सम्पन्न हैं। ताते सब प्रिय लगता है ॥१००॥

इति द्वितीय शतक।

श्रीयुक्त बाबू बजरंगलाल सराफ लक्कड़
(सीतामढ़ी निवासी)
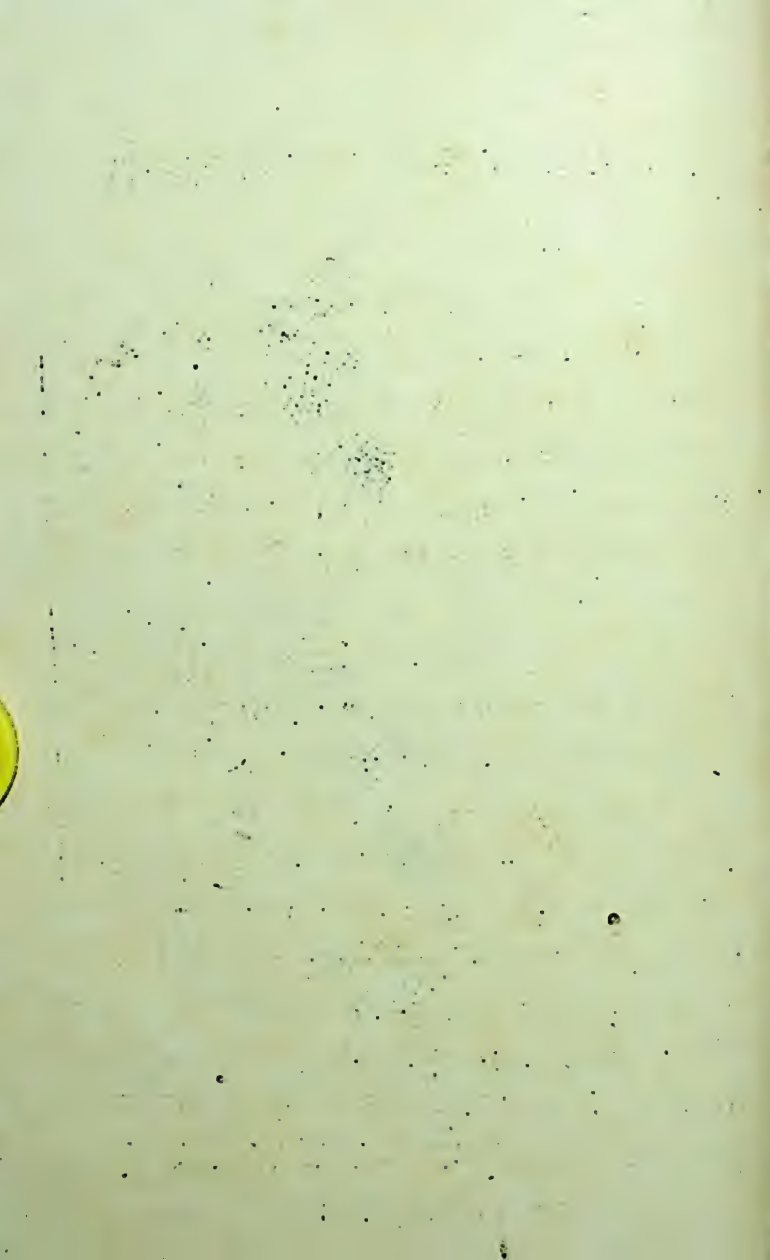
अथ सन्त वचनावली

तृतीय शतक।

और जीव सब नाना दुःखों करके दुःखी है। कोई तो मूर्खता वश दुःखी है। जो कार्य गुरु करिके सिद्ध होता है वह आप करिके किया चाहता है, ताते दुःखी है। कोई विष बोयके सुधा चाहते हैं, ताते दुःखी हैं। कोई जीभ करिके कोई लोभ करिके। ऐसे ही सब दुःखी हैं। सुखी एक सन्त हैं ॥ १ ॥

और जो पुरुष पुण्य पापसे रहित हैं सो प्रभुके माशूक हैं। आशिक अपना मनोरथ चाह त्यागिके माशूकका मनोरथ करता है। ऐस ही प्रभु सन्तोंका मनोरथ सम्पूर्ण करता है। उनको करना कुछ रह नहीं गया। सब बात उन्होंने अपनी कर ली। इसी पर एक वार्ता है। एक सन्त प्रभु प्रिय वृक्षके नीचे सोया पड़ा था। उनको कोई सन्तने सोये पड़े पेखिके जगायके कहा—"हे सन्त तुमपर प्रभुकी प्रीति है अथवा तेरी प्रीति प्रभुमें है?" तब उस सन्तने उत्तर दिया कि महाराजकी प्रीति मेरेमें है। तब उस सन्तने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपना अपराध क्षमापन कराया और कहा—"आप सोइये चाहे जागिये, कृतार्थ हैं ॥ २ ॥

और प्रभुके सहाय्यसे संसार छूट जाता है प्रभुका भाव सहायक सदा है। जैसे जरासिन्धादिक सेना सहित रुक्मिणी-जीका शहर सेनाके बीच हो गया। शिशुपालकी फौजने सब तरफ घेर लिया। अमित चतुरङ्गिणी सेना सहित। दो तीन पहर विवाहको बाकी था। इसी बीच श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमके वश द्वारकासे शीघ्र श्रीरुक्मिणीके शहरमें पहुंच गए। और राजा सब सावधान शस्त्र लिये सब ओर खड़े थे कि कृष्णचन्द्र कन्याको न ले जाने पावे। उसी समय सबके देखते ही कृष्णजी रुक्मिणीजीको जीतके ले गए। किसीको कुछ न चली। श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ द्वारकामें विहार करते भये। ऐसे ही संसारका क्लेशरूप जनेत है शिशुपालमोह है, जीव रुक्मिणी है, तिसते छोड़ायके परमेश्वरका भावरूपी श्रीकृष्ण जीवरूपी रुक्मिणीको परमधाम पहुंचा देता है, जहां नित्य विहार है॥ ३॥

और अज्ञानी जीवसे जो अपराध हो जाता है तिसका कारण प्रभुकी प्रीति प्रतीतिकी हीनता है। और सन्तोंकी प्रीति प्रतीत प्रभुमें दृढ़ है तिससे उनसे अपराध नहीं बनता। जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको सदा समीप पेखती है, तब ही उससे पाप नहीं हो सकता है; ऐसे ही सन्त साक्षात प्रभुको पेखते हैं, ताते अनुचित नहीं कर सकते हैं॥ ४॥

और कोई साधु अपने सत्गुरुका पांव चपावता था, सेवा करता था। उसी समय पूछा—"हे महाराज!—परिवार हमारा

विवाह करनेको कहता हैं। पर हमने आपकी आज्ञा पर वात रक्खी है। यह वात सुनिके गुरु देव उसको लात मारि झिड़कके कहने लगे कि "महा अंधकूप गृहस्थाश्रम, तिसमें तू डूबा चाहता है? चौरासी लक्ष योनिमें पड़कर फिर न कढ़ेगा, और कोई सहाय करके काढ़ भी नहीं सकता है। और हमारा धर्म तुमको कूपसे काढ़नेका है, डुवानेका नहीं है। ताते ऐसी नीच वार्ता भूलके भी न कहना। संत सत्गुरु समागम करिके फिर प्रवृत्ति पंथमें रुचि करते हैं सो अशुचि हैं" ॥ ५ ॥

और कोई संत प्रभुसे विनय करता था—"हे पूर्ण प्रभु! तेरी अनन्त शक्ति सव सृष्टिमें पूर्ण हो रही है। कोई ज़ीव जंतु इससे वाहर नहीं। सव समय सर्वमें तेरी शक्ति छाय रही है। सव पदार्थ सुन्दर सुखदायक केवल तेरी शक्तिसे हैं। आपकी शक्तिसे वृक्ष काष्टमय जिसमें मेवा हो गये हैं। तृण सव शक्ति सम्बन्ध से अन्न हो गये हैं। लोहूमें शक्ति वरताई है तव लोहू दूध हो गया है।जव माँसके ऊपर आपकी शक्ति वरती है तव मांस भी सुन्दर हो गया है। जव बूंद मलीन पर शक्ति वरती है तव सुन्दर चमत्कारयुक्त मनुष्य तनु पाया है। जव आपकी कृपा शक्ति जीव पर होती है तव ब्रह्म हो जाता है। ऐसी प्रवल शक्तिकी आशा निरन्तर करते हैं। मेरेको और आश्रय नहीं है। ताते हे प्रभु! मेरी रक्षा शीघ्र कीजिए, संसार ताप करके वहुत तपित हूं। शीघ्र शीतल कीजिये" ॥ ६ ॥

और मोह मायाकी नींद और सुषुप्ति दोनोंका वीज अज्ञान है।

सुषुप्ति क्षुद्र नींद है, मोह-मायाकी नींद दीर्घ है, अमित कल्पकी है यह नींद प्रत्यक्ष है, मोहमयी नींद गुप्त है। जब उस नींदसे जागे तब मन सावधान होय। तब क्षुद्र नींद भी नष्ट हो जाय सहजमें। स्वप्नमें भी उनको सत्संग भजन होता है, प्रभुकी विस्मृति कभी नहीं होती है॥ ७॥

साखी भाई भड्डनजी की। किसी सन्तने भाई जी से प्रश्न किया—"जो परमेश्वर व्यापक है और यह सब जगत उसकी लीला है, सो नाना भांतिकी देख पड़ती है, तिसमें प्रधान पुरुषेश्वर किस भांतिसे वरतता है, सो रहस्य साफ़ करके सुनाइए दयालुजी।" तब भाईजीने उत्तर दिया—उसी ठौर रहट चलता था तिसमें बरद चलते थे, तिनको तरफ दृष्टि करके कहा कि "बैल हूको देखि के परमेश्वरकी व्यापकता, ईशता समुझि लेवो। प्रथम तो प्रभुने जीवोंसे करार किया है कि जब तुम पुरुषार्थ सहित स्मरण करके काम कोहादिक जीत लेवोगे तब हम मुक्त कर देवेंगे शीघ्र ही। सो यह बैल पुरुषार्थ हीन हैं ताते बंधे हुए चौरासीका दुःख भोगते हैं, मुक्त नहीं होते। प्रभु पूर्ण सबमें हैं परन्तु न्याय करता है। पिछले जन्मका देना यह बरद दुःख सहिके देते हैं। नाना क्लेश परतन्त्रता सहित बैल भोगता है। प्रगट देख लीजिये, छिपा नहीं है, बिना अपराधके कोई बांधा नहीं जाता, प्रभुके घरमें अन्याय नहीं है, जैसा करे तैसा पावे। परमेश्वर करता है। जीव समर्थ मुक्त होनेमें नहीं, जो होता तो दुःख नहीं सहता। ताते दुःख सुख सब उसके अधीन हैं। जो

चाहे सो करे। और सुनो! प्रभु दयालु है। उसकी दया सर्वत्र पूरि रही है। प्रत्यक्ष पेखि लेवो। बैलको बल दिया है, जामा दिया है, घास पानी दिया है। प्रथमे बल दिया है पीछे देना देता है। सिद्धान्त—अंग परमेश्वरका शुद्ध चेतन अपना आप है, दूसरा तो कुछ नहीं। बरद रहट चलानेवाला तथा सब सामग्री आप ही है, दूसरा भ्रम है। और सांख्यकी रीतिसे सब कार्य करता है, आप भिन्न है, विश्व भ्रम मात्र रस्सी सांप सम है, पर भया कुछ नहीं। विचार करके देख, सब उसीका रंग प्रकाश है" ॥८॥

साखी दूसरी भाई अड्डनजी की। जिस देशमें प्रथमे भाई जी रहते थे उस देशका चौधरी जो था तिसका दिवान खत्री भाईजीके दर्शनको आया और दस अरहट माफीका पट्टा सामने धरके कहने लगा—"हे दयालु जी! आपके पास सन्त बहुत रहते हैं, तिनके भोजनके निमित्त दस अरहटका पट्टा चौधरीके दस्तखतसे लिखायके लाया हूं, सो ग्रहण कीजिए जिसमें सन्तों का भोजन सुखसे चले।" यह बात कह कर चुप रहा, उनकी आज्ञा पाय के। तब भाई जीने कहा—"हे दीवान जी! मतिमान् वह मनुष्य है जो जिस कामको करे प्रथम तिसकी रीति गुण दोष मयी विचारि लेवे कि इसका फल अन्तमें क्या होगा सो विचारि ले। विना विचारे जो करते हैं उनको हर्ष शोक रूपी ग्राह ग्रस लेता है। तातें सर्वत्र विचार सार है। और तुम जो अरहटका पट्टा प्रसन्नता निमित्त लिख लाये हो तिसमें विपुल क्लेश, मुझे प्रत्यक्ष मालूम होता है। सुखका इसमें कथन है,

दुःखपूर्ण है। ताते हम नहीं राखते। परन्तु तुमने दिया, हमने लिया, तुम्हारा प्रेम प्रभु बनाये रक्खें, सफल करें। हम ग्रहण नहीं करेंगे।" ॥६॥

तब दीवानने कहा—"इसका दुःख हमें भी खोल कर सुनाइए।" तब श्री भाईजी बोले—"तुम भी सुन लो। प्रथमें जो हमने अरहट लिया तब हिन्दू मुसलमान सब देशमें सुन लेंगे कि भाई जी को दस अरहट चलते हुए मिले हैं। सो तुम्हारे देशमें बहुत सैयद कुरेशी मुलना रहते हैं। वे चौधरी आगे जायके कहेंगे—'देखो, अनरीति। जो हिन्दू फ़क़ीरको दस अरहट चलते हुए मिले हैं। हमको एक भी नहीं। सो हिन्दू फ़क़ीर कौन बातमें श्रेष्ठ है? यह बात हम हूं सुनेंगे और सुनकर कांपेंगे, कि कहीं चौधरी उनकी बात सुनकर हमारा अरहट छीन न लेवें और ऐसी बात चलाने वालेको अपना बैरी समझेंगे। जो हमने अरहटका ग्रहण नहीं किया तो कांपनेसे और बैर से रहित हैं, सुखी हैं। और दुःख सुनों। अब जो धर्मशालामें साधु आवते हैं उनकी सेवा प्रभुके नातेसे की जाती है। फिर यह संकल्प फुरेगा—जो यह खान दीवानके सम्बन्धी क होयं ताते सेवा कीजिए जिसमें स्तुति करें, उनके पास जायके निन्दा न करें। ऐसीसी मनसा सबकी सेवामें होगी। ताते प्रभुकी पूजा रही अरहट की पूजा चली, महा दोष हुआ। और दुःख सुनो। अब प्रभु सबके भीतर प्रेरणा करके अनेक पदार्थ खानेको भेजता है, लोग बांव पड़िके दे जाते हैं। जब अरहट लेवेंगे तब पूज्यसे

पूजक हो जावेंगे। कोई कहेगा आपके खेतका ऊख हमने नहीं खाया। कोई कहेगा चना न खाया। कोई कहेगा साग न खाया। ऐसे ही नाना प्रकारके उलाहने लोग देवेंगे। विना पाये लोग वैर मानेगें, कृपण कठोर कहेंगे। ताते ग्रहणमें महादोष है। और दुःख सुनो। अब जो कुटुम्बोंसे हम छूटे हैं सो बावले निकम्मे होके छूटे हैं। जब अरहट ग्रहण करेंगे तब सब सम्बन्धी आनिके घेरेंगे और कहेंगे—'जब तक तुम विरक्त बनवासी थे तबतक हमने तुझे निकम्मा जानिके त्याग किया था। अब तू दस अरहट चलावता है मेरी भी पालना कर।' जब वे आपड़ेंगे तब किसके काढ़े कढ़ेंगे। और अब असंगका सुख लेते हैं। और दुःख सुनों। हम बनमें रहते हैं। यहां चोरोंका भय रहताहै। ताते हम दीपक प्रकाश करि राखते हैं। सो हमारा घर भलीभांति देख जाते हैं। वे हमको मित्र मानते हैं, हम उनको मित्र मानते हैं। जब पट्टा लेंग तब पदार्थके निमित्त तस्कर ईर्ष्या करेंगे और हमारा भी निर्वाह शस्त्र विना नहीं हो सकेगा। ताते शस्त्रवाले को रखना पड़ेगा जाते साधुनसे शस्त्र नहीं चल सकता। एक दिन युद्ध भी अवश्य हो जायगा, लोग मारे आयंगे। जो यहांके मरे तो दुःख होगा, जो वहांके मरे तो दुःख होगा। काहे कि हमारा निवास बनमें है; साधु लकड़ी आदिके निमित्त बनमें जाया चाहें, तब तस्कर वैर बांधेंगे, महा दुःख होगा। हम सब सनेही वैर विगत हैं। और दुःख सुनों। अब जो संन्यासी नागा आवते हैं जमातिवाले तब हमको निर्धन जानिके राहमें चले जाते हैं।

जब पट्टा ग्रहण करेंगे तब वे सब दंगा मचावेंगे, गांजा, अफीम, सुन्दर अशन वसन मांगेंगे। एकको देके विदा करेंगे फिर दूसरा दंगा करेगा। तब इस ही में जन्म नष्ट हो जायगा। ताते अब वेषकी तरफ़से भी निर्वैर है। और दुःख सुनों। जब बोनेका समय आवेगा तब कोई किसान बीज, कोई बरद, कोई रुपया मांगेगा। कोई कहेगा, मेरे अन्न थोड़ा भया है तुम अधिक माँगते हो, ताते हम चले जाते हैं। बहुरि लोकहुंके पशु खेत खावेंगे, उनको किसान बांधेंगे तब उनके मालिक मेरे पास आवेंगे कि छोड़ाय दो। जो छोड़ाय देवें तो किसान बुरा मानेंगे जो न छोड़ावें तो लोग बैर मानें। ताते विना ग्रहण सब बैरसे छूटे हैं। और दुःख सुनो। शरीर क्षण भंगुर है, एक दिन छूट जायगा। सरदार भी दूसरे हो जायंगे। तब वे अरहटका जमा आप लेने लगेंगे। तब साधु सब आलसी हो जायंगे। तब पट्टा लेकर चौधरीको घरेंगे, खुशामद करेंगे, वह ताने देगा—'जो गुदड़ी, टोपी, लंगोटी पहिनके पट्टा लिये फिरते हैं, प्रभुके संत कहावते हैं।' ऐसा दुर्वचन कहिके निकास देवेंगे। तब महा दुःखित होयंगे। यह सब खेद अरहटके ग्रहणसे होवेगा। अब तो अनालस शोक समेत उद्यम करके प्रसन्नता सहित प्रसाद पावते हैं, खुश रहते हैं, विवेक धारे हैं। और दुःख श्रवण करो। विचारो मनमें। अब लोग प्रभु वार्ता रहस्य सुननेको निकट आ बैठते हैं तब दिन रात्रि संसारी झगड़ेमें दिन बितावेंगे। हमारा भी काल व्यर्थ बीतेगा। दुर्लभ तनु प्रभु मिलन योग्य सो नष्ट

हो जायगा, झगड़ा गले पड़ जायगा। अब सत् विचार स्मरणमें दिन बीतता है। अब अपने शरीरके निमित्त उद्यम करि खाते हैं फिर आलसी हो जांयगे। जब अरहट छूट जायगा तब राजसी जीवों की खुशामद करेंगे। दर दर घूमेंगे। धान्य कुधान्यका कुछ विचार नहीं करेंगे। तातें अरहटके लेनेमें दुःखोंको खानि है, सुखका लेश नहीं। तातें तुम इस मलीन कागज़को अपने पास रक्खो, हमारे कामका नहीं है।" यह बात सुनकर दीवानने वाह वाह किया, सब भांति सराहा। 'आप धन्य हैं जो मायाका त्याग किया है। हमारे द्वार पर बहुत फ़क़ीर धूनी लगाये धरना दिये हैं एक अरहट अर्थ। और आपने अनइच्छित आया हुआ इस अरहटका त्याग किया। और जेते दोष कहे सो सत्य। माया महा दुःख दायिनी है।' फिर कुछ धन रक्खा उसको भी न लेवें तब बहुत विनतीसे लेकर और काममें लगा दिया, साधुओंको खाने को नहीं दिया॥ ६॥

साखी तीसरी भाई अड्डन जी की। एक बार तस्कर भाई जी की गौ चोराय ले गए। तब भाई जी ने उनके बछरू भी भेज दिये। दुःख दोनोंका विचारिके। चोर सब बछरू पायके मुदित भये। कहने लगे कि मनमाना सुख पाया है। तिसके पीछे चोरोंके घरमें महा आग लगी, बुझाये न बुझै। तब लोगोंने कहा कि 'ऐसे महात्माकी गऊ लायके को जाने तुम्हारी कौन दशा होयगी।" यह सुनिके विचारिके धर्मशालामें गये। साधुओंसे कहा कि 'अपनी गऊ ले आवो।' साधुओंने कहा—'विना गुरू

जीके कद्दे हम न लावेंगे।" तब बहुत दण्डवत् करि विनय समेत ले गए। बहुत सत्कार करिके गऊ सौंप दिया। साधुओंने धेनु लायके भाई जी से कथा कही। भाई जी बोले—"प्रथमे तो मायाके पदार्थ रखना संतको उचित नहीं। और जो राखे तो ममता त्यागिके राखे, आये गए हर्षशोक न करे तो भला है। जो प्रारब्धानुसार आगई तो रख लेवो, संतोंकी यही रीति है"॥१०

साखी श्री दर्शन भक्त की। एक वार श्री भक्त जी के घर दो साधु आए। तब भक्तजी ने मिस्सी रोटी खिलाई मिलौनी दाल सहित। जो तैयार था तिसको भाव सहित पवाया। कुछ दिन पीछे भक्त जी दैव संयोगते उस साधुके नगरमें जा पहुंचे। तब उस संतने पछान कर सादर घरमें लाया और रात्रिका समय था, दोनों मूर्तिको प्रथम प्रसाद पवाया, फिर ऊख चुभाया, फिर दूध पिलाया, पुनि सुन्दर तोसक–तकिया–चादर पर्यङ्क पर बिछाके सोवाया, पाँव दवायके फिर प्रातः काल स्नान करायके नाना भोजन षटरस आगे रक्खा प्रेम समेत। तब श्री भक्त जी भोजन देखि रुदन करें, भोजन न करें, आंसूका प्रवाह चला जावे। तब संतने पूछा—"आप भोजन काहे नहीं पावते? मेरेमें तो अवगुण अनन्त हैं, परन्तु जो इस समय भया होय अपराध सो क्षमा करिये, भोजन पाइये, क़सूर खोल कर कह दीजिए।" भक्त जी बोले—"हमारी तुम्हारी प्रीति उसी दिनकी है जिस दिन हमारे घरमें मिस्सी रूखी पाया था। सो हम प्रभुकी करुणा, उदारता विचारिके आश्चर्यमें हैं कि कुअन्नके बदले थोड़े दिनमें

नाना प्रकारका सुख तुम्हारे द्वारा प्रभुने दिया है। ऐसे महाराज के अर्थ जो पदार्थ नहीं दान करता सो महा मंदमति पाजी हैं। और रुदन इस निमित्त करते हैं कि हमने लड़कपनसे अपने घर तथा पराये घरमें नाना पदार्थ स्वादिष्ट, सरस इसको पवाये हैं और इस शरीरने विष्ठा-मूत्र बिना दूजी चीज़ कुछ नहीं दिया। तातें हाय! वृथा अपने खाने-पीनेमें जन्म खो दिया। जो संन्तोंके मुखमें पड़ा सोई सफल भया। प्रभुके घरमें सब सुख है, परन्तु मुक्ख पुरुषार्थहीन को नहीं मिलता। श्री गुरूजीसे सुना था कि रोनेसे महाराज शीघ्र प्रसन्न होता है। तातें रुदन करके प्रभुको प्रसन्न करता हूं। वह महाराज कोमल हैं, रेणुके बदले सुमेरु देता है और देने सम कुछ और है नहीं। तातें सन्त सेवा सार है सबमें। इस निमित्त रुदन करके प्रभुको मनावता था कि साठ वर्ष तो शरीर रूप ठगसे ठगाया है, प्रभो! अब भी तो वैराग्य देहु जिसमें आपको पाऊं" ॥ ११ ॥

और कोई संत प्रभुसे प्रार्थना करता था। हे दीन बन्धु! सब लोग आपसे अनेक चाह रखते हैं, सो आप देते हैं। तातें हमारी चाह यही है कि हमारेमें चाह न रहे और अपने शरीरादिकोंको ममता न रहे, केवल आपही रह जावो, मैं न रहूं ॥ १२ ॥

और किसी सन्तने पूछा—"शूरमा कौन है?" तब सन्तने उत्तर दिया—"जो मनुष्य, पशु, पक्षी किसी जीवके दुखाये दुख नहीं।" पुनि पूछा कि "धर्य्यवान कौन है?" उत्तर दिया कि "जो मनके संकल्प पर फूल लगने न दे, तुरन्त दूर करे। जैसे

किसी पर शेर पंजा चलावे, वह पंजा सहारिके पेटमें कटार डारि देवे, तब जवांमर्द है। ऐसही मनको विकारोंते रोक डालना बड़ा धैर्य्य है॥ १३॥

और दुष्टका वचन आगकी चिनगारी सम हैं। जैसे दारू और आग मिलके तुपक चलता है। तैसही दुष्ट वचन और मलीन मन मिलके क्रोध होता है। सन्तोंका हृदय हिम सम शीतल है, वहाँ आप ही आग बुझ जाती है॥ १४॥

साखी। श्रीगुरुदेवने शिष्यको सुनाई है। एक खत्री किसी शहरमें चार करोड़का धनी था, परन्तु कृपण—कदर्य था। न आप खाय न कोई को खवावे। धन पर खाट बिछाये सोया रहे। सब साथ वैर किया, केवल धनसे प्रीति बाँधी। अन्तमें यमके गण धर्मराजकी आज्ञासे प्राण काढ़नेको आये, तब आवते ही खाट परसे उसको पटका। तब उसने कहा—"अरे तू कौन है?" तब फिर धोबीके कपड़े सम उसको पटका। पुनि बोला "अरे तुम कौन हो?" तब दूतोंने कहा—"तेरे मारनेहारे हैं।" तब डर कर करोड़ रुपया देने लगा। फिर दोनोंने मारा। तब दो करोड़ देने लगा कि हमको छोड़ जावो। दूतोंने कहा—"न छोड़ेंगे सब भूमिका राज्य दिये।" तब उसने कहा—"एक दिन, दो दिन को छोड़ जावो, धन ले लो।" दूतोंने कहा—"जो धनार्थी हम होते तो धनी को न मारते, गरीबों को मारते। हमने रावणादि बड़े बड़े राजाओं को नहीं छोड़ा है, तेरी क्या

गिनती है। हम अपने स्वामी की आज्ञा मानें कि तेरी मानें। इसी समय तेरे प्राणको काढ़िके यमलोक ले जावेंगे, घड़ी क्षण न मानेंगे, दिन पहर की कौन बात है।" तब खत्रीने जाना कि अब हमें त्यागिके न जावेंगे। तब विनय किया—"हे दीन दुःख दूर करने हारो! हम लक्ष्मी जी से दो चार बातें कर लेवें तब तुम जो चाहो सो करो।" दूतोंने प्रभु हुक्मसे कहा—"बात कर ले।" तब बोला—"हे लक्ष्मी! हमने सदा आप ही की सेवा की है, सबसे नाता तोड़ के। तू मेरी सहाय कर। यम दूतोंके कष्टसे छोड़ावो अथवा साथ चल। तेरे बिना हम नहीं रह सकेंगे धुर तक न चले तो मसान तक तो चल।" यह बात सुनकर लक्ष्मी जी से शब्द कढ़ा—"हे मूढ़ नीच! हमसे जो स्नेह करते हैं तिनको हम नागिन होय के डसती हूं, जो हमको प्रभुके अर्थ उदारता समेत खर्च करते हैं तिनको हम दोनों लोकमें महामोद देती हूं, जो हमको माटीके साथ दबा देते हैं तिनको सदा दुर्दशा होती है, वे दुष्ट हमारे वैरी है। जो हमारा त्याग करते हैं तिनका त्याग हम कभी नहीं करती हैं। यह हमारा रहस्य है। और हमारे में नाना दिव्य गुण हैं सो उदार पुरुष को प्राप्त होते हैं, कृपण को सोई सुधा सुगुण हलाहल विष हो जाता है। तूने न सन्त सेवा की न दान दिया न बापी कूप बनाया न दुःखी पर दया की। ताते अब अपने कर्मों को रोवो। हमसे तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। तू हमारा और मेरे स्वामीका विरोधी है। जैसा किया तैसा फल भोगेगा। तैंने मनुष्य तनु और

इसको वृथा गवाँ दिया। और हम प्रभु की चेरी हैं तिसको तू अपना जानता भया। ताते महा अपराधी है। अब यमलोकमें जाकर नरक भोग कर।" ऐसा कह कर लक्ष्मी जी मौन हो गईं। वह खत्री बड़ी पछतावा कर, हाय मार यमलोकको गया। धन के राखनेहारों की यही गति है। ताते उदारता सार है ॥१५॥

और वचन। शरीर रोगों की खानि, गृहस्थी सोगोंकी खानि, अविवेक जन्मों की खानि और विवेक सुखों की खानि ॥१६॥

और जिसके चित्त वश से चक्रवर्त्ती राजा, जिसके इन्द्रिय वश सो देश का राजा, जिसके शरीर वश सो घर का राजा, चौथा पिङ्गल का राजा ॥१७॥

चार साँझ। धन दुरुस्ती दुनियै की साँझ, तन दुरुस्ती अपने सुख की साँझ, मन दुरुस्ती अपने साँईकी साँझ, स्वरूप दुरुस्ती अपना आप ॥१८॥

चार वाक्य। सराय बीच रहना तो दावा क्या? अपना खाना तो दीनता कैसी? आपको सही नहीं किया तो बुद्धि कैसी? मर जाना तो चिन्ता कैसी? ॥१९॥

चार वचन। कोई का उपकार औरमौत सदा याद रखना। निज उपकार और पर तथा पराया अपराध अपने पर दोनों भुला देना ॥२०॥

दुनिया को दुःख रूप जानना पहली, नाशवान जानना

दूसरी, कल्पित जानना तीसरी, अपनी कल्पना जानना चौथी—चार भूमि का इसमें समझो विचारिके ॥२१॥

श्रवणादि ॥ श्रवण मोर सम, मनन तनु सम, निदिध्यासन नाम सम, साक्षात्कार अहंकार सम ॥२२॥

और जो कुछ आगे सुना होय सो झूठ जाने, सो श्रवण। आगे माना होय तिसको त्यागे सो मनन। प्रथम पेखे को त्यागे सो निदिध्यासन। जब अहंकार यथार्थ पदार्थमें हुआ तब साक्षात् ॥२३॥

जब पदार्थसे वृत्ति पार भई तब श्रवण। देह ते वृत्ति टापी तब मनन। चित्त ते वृत्ति टपी तब निदिध्यासन। जब अहंकार से वृत्ति पार भई तब साक्षात् ॥२४॥

और क्रिया पर दृष्टि सो कुत्ता, किस्मत पर मेहर सो राजा। सुरत पर मेहर सो पाजी ॥२५॥

और अवश्य मर जाना, संग कुछ न ले जाना, जीवते अघाना नहीं ॥ २६ ॥

और पाँच आग। कर्म चूल्हे की, उपासना आवे की, शोक बिजुरी की, विचार वड़बानल, अनुभव महा प्रलय की अग्नि है ॥ २७ ॥

और षट लक्षण मनुष्यके। पराई नारी माता, पराया धन माटी, पराया दुःखसुख अपने सम। ईश्वर कौन है, मैं कौन हूं, जगत क्या है ॥ २८ ॥

और बरतन। वैराग्य मुख्य मुद्प्रदभक्ति। निश्चय निजपर ज्ञान ॥ २६ ॥

और वचन। जागृत सुषुप्तिमें थीर मति, मरनेकी चिन्ता नहीं, जीनेकी आशा नहीं, जीवते नाल यारी मुए साथ फारख़ती ॥३०॥

और चार भूख। आधी भूख संसारी मात्रकी, आधी शास्त्र विद्या की, सारी परलोक की, ढाई गुनी भूख जिज्ञासु प्रभु प्रेमीको ॥३१॥

और सब कर्म नेम दृढ़ता अर्थो, नेम समूह प्रेमके अर्थो, प्रेम एका कारता अर्थो, एका कारता विशद विवेकार्थो, विमल विवेक स्वरूपा नन्दार्थो है ॥३२॥

और प्रथम विचार दीपक, दूसरा मशाल, तीसरा माहतावी चौथा एकम का चन्द्रमा जो यतन बिना बढ़ता है पूर्णमासी तक प्राप्त होता है, अपरोक्ष बोध प्रभाकर है ॥३३॥

चार पदार्थ। (१) पदार्थों में मति (२) सद्गुरु सज्जन लाभ, (३) ब्रह्मानन्द की प्राप्ति (४) तनदुरुस्ती ॥३४॥

अविद्या के चार भाग। एक भाग जड़ चेतन विचारसे विनाश। दूसरा भाग मनके धर्मसे रहित भये से विनाश। तीसरा भाग बुद्धिके धर्मसे रहित भये से विनाश। चतुर्थ भाग अहंकार अध्यास शमन भये विनाश होता है ॥३५॥

शुद्ध बुद्धिका लक्षण। व्यवहार परमार्थमें समता, निरुद्वेगता ॥३६॥

तीन परचा। चित्तका परचा बादशाही, धर्मका

परचा वज़ीरी, सकाम कर्मों का परचा दौलतमन्दी ॥३७॥

शरणागतके मुख्य चिन्ह। अखण्ड नाम स्मरण, शान्ति, समता, संग सेवा, नम्रता ॥३८॥

मनके भेदी सन्त। मन, बुद्धि, चित्तकी लड़ाई जिज्ञासु समीप अपने सदा मीच को देखना, मौतको अपने भीतर से काढ़ना सोई ज्ञान। स्वभावको जानिके जीतना सो स्वच्छ भक्त जीवन मुक्त बिना शास्त्रके अभ्यासी हैं। परन्तु पदार्थ देखा नहीं, शास्त्र सुमति सम्पन्न अभ्यासी संशय रहित पदार्थ देखा है ॥३६॥

चार पदार्थ हैं। एक सदा घटती आयु, एक सदा बढ़ती है तृष्णा, एक कभी घटे कभी बढ़े—संकल्प-विकल्प, एक कभी घटे न बढ़े—प्रारब्ध कर्म ॥४०॥

और बुद्धि नारी, मन पुत्र जिसके वश सो जीवन मुक्त ॥४१॥

मनुष्य डेढ़। विज्ञानी सम्पूर्ण, जिज्ञासु आधा, बाकी पशु ॥४२॥

डेढ़ पुण्य डेढ़ पाप। प्रभुका स्मरण विस्मरण सम्पूर्ण पुण्य पाप है। किसी को सुख दुःख देना आधा पुण्य पाप है ॥४३॥

अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण। कोई सिर काटने आवे तो खेद नहीं, चला जाय तो मोद नहीं ॥४४॥

महा मूर्खराज वह है जो जानता है कि अवश्य मर जाना है,

तो भी परलोक की चिन्ता नहीं करता, विषय रति करिके ।।४५।।

ईर्ष्या, वैराग्य, मौत, चित्त आवने की करना ।। ४६।।

उपासना, आज्ञा मानना प्रभु का;कर्म, पापोंसे ग्लानि करना; ज्ञान—कुछ भया नहीं।।४७।।

इसके तीन लक्षण—निःचिंतता, बेपरवाही उदारता ।।४८।।

मति की मलीनता—चतुराईमें लगावना। चित्तकी मलीनता रागद्वेष करना। मनकी मलीनता—लोभ।अहंकारकी मलीनता देहाभिमान ।।४६।।

बुद्धिबोध, चित्त चेतन,मन उन्मुन, अहंकार असीपद ।।५०।।

सत्‌चित्त-आनन्द—तीन करके छिपा है। अनित्यता सत् को, जड़ता चैतन्य को और दुःख मोदको छिपाये हुए हैं ।।५१।।

साखी। प्रभु स्मरण और धर्म करनेमें ढील न करो। कलह करना होय सो आज करो जिसमें कलह प्रसन्नता पावे। मनको शिक्षामें रक्खो। हे प्यारे! मनके वादे को न मानो मन बड़ा दगाबाज़ है ।।५२।।

और हमने चार हज़ार ग्रन्थ पढ़कर सुनकर चार बातें सार निकाल ली है। प्रथमतः—हे मन मेरे! जो तू प्रभुका भजन न कर सके तो प्रभुका रिज़्क न खावो। दूजो उपदेश-मन मेरे सुनो! जो प्रभुके किये पर राज़ी नहीं है तो और साँई नवीन बने तो बना ले। तीसरा उपदेश—मन मेरे! जो प्रभु प्रतिकूल कर्म त्याग न सके तो साईंके देशसेऔर देशमें जा रहो। चौथा

उपदेश मन मेरे ! जो पाप त्याग न सके तो वहां जाकर करो जहां प्रभु न देखे ॥ ५३ ॥

एक दिन एक सन्त वनमें गये। तहां अजा चरानेवालों को देखकर पूछा—"तू कुछ पढ़ा है ?" तब उसने कहा —"समस्त विद्याका सार मैंने पांच पदार्थ पढ़ा है। उसीको सदा मनन करता हूं। प्रथम वचन—भजन प्रभुका कर सकिये तो पाप न करिये। सांच बोल सकिये तो झूठ न बोलिये। तीजा—शुद्ध भोजन जो मिल सके तो अशुद्ध धान्य न पाइये। चौथा—अपना अवगुण देख सकिये तो पराया अवगुण न देखिए। पञ्चम—जो परमेश्वर साथ प्रीति कर सकिए तो और के साथ सनेह न करिए ॥५४॥

इन बातोंपर ध्यान रखता हूं जो प्रभुने आज्ञा की है। हे मनुष्य ! तू पापोंसे और हमसे निडर भया है तिसका दण्ड प्रचण्ड अंतमें पावेगा, मेरी बादशाही अटल है। दूजी आज्ञा। जीविकाके अर्थ भय मत कर कभी, मेरा भाण्डार भरा है, सब ठौरमें तुझको पहुंचा दूंगा, संशय न करना। तीजा वचन यह है—जो कार्य्य तू सांचे मन साथ करेगा तिसको हम अवश्य पूरा देंगे, सत्य मानना। चौथी मैं तुझे प्रियतम जानता हूं, तू भी मुझे प्रियतम जान। पांचवीं आज्ञा मेरी तरफसे तथा काल की तरफ से बेखबर न हो बैठ, कभी सजा पायेगा। छठी आज्ञा हे मनुष्य ! जो तेरे पैदा करने में हमको श्रम न भया तो रिज्क देनेमें मेहनत क्या है, ताते निशोच

रहा कर। सातवां हुक्म। तेरे ताईं बनाया है हमने सब पदार्थ और तुझको अपने भजनार्थ बनाया है। सो तू पदार्थ भोगता है पर भजन नहीं करता मारा जायगा। आठवाँ हुक्म यह है—सब कोई तेरे साथ प्रीति अपने स्वार्थ वास्ते करता है मैं तेरे निमित्त प्रीति करता हूं। नवाँ हुक्म—अपने मनके अर्थ तू हमपर क्रोध करता है, मेरे वास्ते मनपर क्रोध नहीं करता, बूझा जायगा। दसवाँ हुक्म—तेरा काम भजन करनेका, मेरा काम रिज़्क देनेका है। सो हम रिज़्क देते हैं परन्तु तूं आलससे सुमिरन नहीं करता, महा नीच पाजी है। बात विचित्र। ग्यारवाँ। हे मनुष्य! मेरे साथ करार सब झूठा करता आया है; मैं तेरे साथ सदा सच्चा वादा पूरा तीनों कालमें कर रहा हूं, यह विचारिके तो शर्म संकोच धारण करो मनमें। बारहवाँ हुक्म यह है—तू मेरे दियेपर राज़ी नहीं होता ताते तुझको दर दर भ्रमावता हूं, तू विश्राम नहीं पाता ॥५५॥

और प्रीतिवान आगे तीन परदा पड़ा है प्रबल, तिसको दूर करे तब धीरे धीरे प्रभु परेक्ष महलमें जाय पहुंचे सही। प्रथम परदा बड़ो दुःख दायिनो सदाकी माया है सो प्रभुके भजनका आवरण है। दूसरा कुसंगका परदा है सो धर्मका आवरण है। तीसरा मनका परदा संकलपमय है सो प्रभु स्वरूपका आवरण है ॥ ५६ ॥

और अफसोस आता है उस मनुष्य नीचपर जो मायाको

झूठी जानकर फिर जहाँ तहाँ देशोंमें भटकते फिरते हैं, यह नहीं जानते कि माया हमको खाजेगी, सब पदार्थ रह जायगा। दूजा अफसोस आवता है उनपर जो प्रभुको छोड़कर पाप कमर कसकर करते हैं, यह नहीं जानते कि इसका बदला महादुःख उठाऊँगा जिसका अन्त नहीं। तीजा उसपर पछतावा लगता है कि जो अमोलक दिनको हंसने-खेलनेमें नष्ट कर डालते हैं। यह नहीं जानते कि प्रभु हमपर नाराज है ॥५७॥

और मायाको कोढ़ी समान रूप करके सबके सन्मुख खड़ी करेंगे—दाँत बड़े, आँख बिल्लोकी, ओठ लटके भये। महा भयानक रूप देखिके लोग डरेंगे और रक्षा चाहेंगे। तब हुक्म होगा कि जिस मायाके सम्बन्धसे तुमने दीननको सताया था, हमको भुलाया था सो प्यारी माया तुम्हारी है। यह कहकर हुक्म होगा कि मायाको नरकमेंडालो। तब माया कहेगी—हमारे प्यारे सखाके तिनको साथ कर दीजिए। तब मायाके स्नेही सब घेर नरकमें जायगे ॥५८॥

और एक सन्तको आकाश वाणी भई कि हमने तेरेको सबसे अतिक पसन्द किया है, तिसका कारण कौन है, तू जानता है?" सन्तने कहा—"तेरी तू जान।" तब प्रभुने कहा—एक बार हमने सबको देखा तिसमें निरभिमान तेरेको देखा। ताते तुझे पसन्द किया, गरीबसे मेरा स्नेह है ॥५९॥

और तीन परदे जो आगे कह आये हैं महल प्राप्त्यर्थ तैसेही तीन यह हैं—प्रथम मायाको सत् मानना, दूजे आये गये

हर्ष शोक करना, तीजे जो माया अन्तको बुराई करेगी तिसको न जानना ॥६०॥

किसी सन्तसे कोई पूछा कि आपका क्या हाल है? तब सन्तने उत्तर दिया—मन भोग मांगता है, धर्मशास्त्र धर्म, प्रभु भजन, कुटुम्ब रोटी माँगते हैं तिसकी कौन दशा कहें ॥६१॥

जो तू चाहे कि प्रभु तेरेपर प्रसन्न होय तब तू मायासे मन मोड़ निर्धनताई धारणकर ॥६२॥

जागता ज्ञानवान है, सोता जिज्ञासु है, संसार मुर्दा है ॥६३॥

खान, मान, गुजरान तीन नदी हैं, इसमें सब डूब रहे हैं ॥६४॥

वेश्यागामीको अपनी पत्नी पसन्द नहीं, शराबीको और निशा पसन्द नहीं, वेदान्तीको और शास्त्र पसन्द नहीं ॥६५॥

जिसके चित्तको गम नहीं सो सांचा बादशाह, जिसको चाह नहीं सो ईश्वर. अपनेसे भिन्न कुछ न देखे सो ब्रह्म ॥६६॥

एक दिन दबे खज़ानेके ऊपर सात तरहकी सात बातें उपदेशसार देख पड़ी। प्रथम यह वचन उपदेशमय—मुझको उस मनुष्यपर सदा अफ़सोस आवता है जो मरना सांच जानता है फिर भी हँसी खेलमें दिनको वितावता है सोच रहित होयके दूजा उपदेश—अफ़सोस उस मनुष्यपर आवता है जो माया झूठी जानता है और फिर उसपर भरोसा करता है। तीजा—अफ़सोस उस मूर्ख नीचपर आवता है कि जो जानता भली-

भाँति कि सब काम श्रीमहाराजके लिखे अनुसार होता है तब भी वृथा चिन्ताकुल होयके प्रभुको भुलाय दिन रात खराब होता है, तीनों कालमें मोद हीन रहता है। पाँचवाँ—अफ़सोस आवता है उस मनुष्यपर जो नरककी आगकी गरमीको जानता है कि सैकड़ों सूर्योंसे गरम है तौभी पाप करनेमें जवांमर्दी करता है। छठाँ—अफसोस उस मूर्ख गंवार पशु कृतघ्नीपर आवता है जो श्रीमहाराजका सुख अचल अनूप सुनिके फिर प्रभु स्मरणमें ढील करता है मायामें उरझिके। सातवाँ—अफ़सोस उस मनुष्यपर आवता है जो प्रभुको सर्वोपरि जानिके फिर और साथ स्नेह करता है ॥६७॥

एक सन्त अपने स्नेहीको उपदेश करने लगे। कि मेरे पीछे माया तेरे पास आवेगी, छल बल करके तुझे नाश करेगी, ताते मायाको अब ही त्यागकर। यह माया महाजादूगर हारूत मारूत सम है। इसको मिठाईको करुआई समजान और इसकी करुआईपर लोककी मिठाई है, सुखको दुःखजान और जीवनेको मरना जान, मायामें भूलिके सनेह नकर कबहूं ॥६८॥

और इस षट ठौरमें जो संसारी वार्ता तथा प्रमाद करते हैं तिनकी तीन वर्षकी सबल सुकृति नाश हो जाती है, सो सुनो-(१) प्रभु मन्दिरमें अन्य वार्त्ता, (२) स्मशानमें, (३) सूतक समीप, (४) पिछली रातमें, (५) सतोके समीप, (६) सुमिरन समय। इन सब ठौरोंमें सावधानी चाहिये ॥६९॥

और जो पापी मनुष्य होते हैं, तिनकी प्रीति छ पदार्थोंमें

होती हैं। प्रथम माया साथ, दूसरे सिकदारी साथ, तीसरे षटः रस साथ, चौथे नारी साथ, पांचवें सोने साथ, छठे संसारी ऐश्वर्य्य साथ स्नेह होता है, अपनेको उसीमें धन्य मानते हैं। ॥ ७० ॥

और तीन ठौर मनुष्य मुर्ख बन जाता है। एक नारी समीप, सो धर्मको काटनेको तेग वेगवान तेजतर हैं; दूसरी निशा (मद) जो जिन्दगीको नष्ट कर डालती है; तीसरी प्रीति धनकी सो संसारियोंका दास कर डालती है ॥ ७१ ॥

और जिस समय निर्धनताई तेरे पास आवे तो तू महामुदित होयके सन्तोषी रह और दौलतके आये अपने पापका उदय जान ॥ ७२ ॥

और जो यार चाहता है तो प्रभु बहुत है, जो साथी चाहता है तो चित्रगुप्त बहुत हैं, जो उपदेश चाहता है तो भूमि मसानकी बहुत है, सतसंग चाहता है तो पुस्तक बहुत है॥ ७३ ॥

साखी। धिक्कार है उस मनुष्यपर जो गरीबको धन हीन जानिके निरादर करता है और धनी जानकर आदर करता है, सो प्रभु विमुख है॥ ७४ ॥

साखी। कपटी मनुष्यकी परलोकमें दो रसना आगे पीछे होवेगी, दोनोंमें कोढ़ चुवेंगी, लोहू पीव प्रवाह, जाते बाहर भीतर की रीति भिन्न भिन्न रही तिसकी यह सजा है ॥ ७५ ॥

साखी। संसारमें आठ चीजें बहुत भली हैं। प्रथम-अदब औरतोंमें। दूजे वैराग्य जवानीमें, तीजे भजन पण्डितोंमें.

चौथे उदारता धनवानोंमें, पाँचवाँ प्यार मित्रोंमें, छठाँ वफ़ादारी सुन्दरियोंमें, सतवाँ इन्साफ़ बादशाहोंमें, आठवाँ मारफ़त फ़क़ीरों में। आठ बिना आठ तुच्छ है—नारी बिना अदब ऐसी है जैसे भोजन बिना लवण। पढ़कर अखण्ड सुमिरन न करे तो वृक्ष है मेवा बिना। जवानीमें त्याग नहीं तो बादल है वर्षा बिना। धनी उदारता रहित सो सर है पानी बिना। मित्र है प्यार नहीं सो देह है चेतन बिना। सुन्दर है वफ़ा बिना सो कमान बिना रौदेके। बादशाह बिना इन्साफ़के सो शहर है मनुष्य बिना फ़क़ीर बिना मारफ़त सो दीपक है प्रकाश बिना॥ ७६॥

साखी। एक सन्तने महाराजसे अर्ज किया कि आपको कहां पाऊं?" तब आकाश वाणी भई—सब भांति निरहंकारी मनमें। तब सन्तने कहा—मैं सब भाँति दीन हूं। तब प्रभु ने कहा—अपने भीतर ही हमको देख ले॥ ७७॥

एक सन्तकी सेवा करके एकने प्रसन्न किया। तब सन्तने सात सिद्धान्त वाक्य उपदेश किया। प्रथम, भजन समय मन अडोल राखे। दूजे, सत्संगमें जोभ नयन रोके राखे, इधर उधर न देखे। तीजा, जिस समय प्रसाद पावै उस समय शुद्ध कुशुद्ध विचार करे। चौथा, किसीके घर जाय तो शीश नीचा राखे रहे। पाँचवाँ यह कि प्रभुको तथा मोतको सदा निकट देखे। छठाँ यह कि भला करनेवालेके साथ भलाई करे। सातवाँ, बुराई करने हारेके साथ बुराई न करे॥ ७८॥

साखी। एक सन्तके पास माया आई। तब सन्तने कहा

कि तेरे पति केते हैं ? उसने कहा—अनन्त हैं। सन्तने कहा—तैंने उनका त्याग किया कि उन्होंने तेरा त्याग किया ? माया बोली—मैंने उनका त्याग किया। तब सन्तने कहा—"धिक्कार उनपर जो प्रभुको छोड़ कर ऐसी माया साथ प्रीति करते हैं, विरस मान कर त्याग नहीं करते हैं ॥७९॥

साखी। एक सन्तके पास माया कुआरी कन्या बन कर आई। तब संतने पूछा—"तेरे पति तो बहुत तू कुवारी काहे रह गई ?" मायाने जवाब दिया कि हमको जो चाहते हैं सो नामर्द हैं, जिनको हम चाहती हैं सो मर्द हैं, वे मेरा त्याग करते हैं, ताते कन्या रही ॥८०॥

साखी। बहुत ढूंढ़ि के एक प्रभु प्रियतम को हमने पाया, सेवा करके पूछा—"हे महाराज ! बड़ा धनी हम कौन भांतिसे होवें ?" तब संतने उत्तर दिया—अपने प्रारब्ध पर प्रसन्न रहा कर। फिर मैंने पूछा कि स्याना-चतुर मैं कैसे बनूं ? संतजीने कहा—श्री भगवंतजी का डर अपने भीतर राख। मैंने पूछा—मैं शूरमा कौन भांतिसे होऊं ? सन्त बोले—तैं औरन पर सोई कर जो तेरेको भावे। फिर पूछा—मैं विश्वमें श्रेष्ठ कैसे बनूं ? संत बोले—सबका भला चाह सदा। फिर पूछा—सन्तोंकी संगतिमें मैं मिलूं। सन्त बोले—भजन बहुत करो। मैंने कहा—सबका प्रिय होऊं मैं ? सन्त बोले - सबसे सनेह छल रहित करो। मैंने कहा—नरकसे मैं कैसे बचूं ? सन्त बोले—क्रोध तज। मैंने कहा—प्रभुके पास विनय मेरी अंगिकार होय ?

सन्त बोले-कुअन्न न खावो। मैंने कहा--मेरा परदा न फटे। सन्त बोले-- और का परदा न फाड़। फिर मैंने कहा--साईं राज़ी कैसे होय? सन्तने कहा--मनको कथनी से उलटी रीति करो। मैंने कहा--"प्रभुका साक्षात् कैसे होव? सन्त बोले-- भोगका त्याग कर सदा ॥८१॥

मनुष्यके शरीरमें पांच मोती है तिसके पाँच दुश्मन हैं। प्रथम मोती धर्म तिसका शत्रु झूठ। दूसरा मोती बुद्धि है तिसका रिपु क्रोध है। तीसरा मोती सन्तोष तिसका दुश्मन लोभ है, चौथा मोती विद्या है दुश्मन उसका अभिमान है। पांचवां मोती उदारता रिपु उसका पछतावा है ॥८२॥

साखी। पांच वस्तु पांच को खाती है। चिन्ता उमर को, कृपणता रिज़्क़ को, निद्रा भजन को, त्याग पाप को, उदारता बलाय को खालेती है ॥८३॥

साखी। जिज्ञासुने पूछा--धर्मका तत्व क्या है? सन्तने कहा--सांच, बुद्धिका तत्व क्या है? संत बोले--गरीबी। गरीबीका तत्व क्या है? सन्त बोले--सन्तोष ॥८४॥

साखी। संतोष प्राप्त होते ही विश्वसे भिन्न भया बेपरवाह, अडोल मोदमय भया, तृष्णा गई बन्धन छूटा मत्सर मिटे, प्रीति प्रगट भई ॥८५॥

सन्तसे सन्तने पूछा--फ़कीरी क्या है? सन्तने कहा--अपने भाईको मारे, नारीका त्याग करे, माता साथ संग करे सोइ सांचा सन्त है। सन्तने फिर पूछा--माने (अर्थ) साफ़ करके

कहिए। सन्त बोले—भाई सदा संगी तेरा मन है तिसको मार। नारी माया है तिसका त्याग कर। माता धरनी है तिसमें मिल रह ॥८६॥

चार चिन्ह लड़कोंमें श्रेष्ठ है सो सन्त ग्रहण करते हैं। (१) प्रथम भोजनादि चिन्ता त्याग। (२) दूजे आपसमें लड़कर क्रोधकी गाँठि नहीं राखते। तीजे रोग समय प्रभुकी निन्दा नहीं करते। चौथे संगियोंके दुःख सुखमें साथी नहीं होते हैं ॥८७॥

सांचा सन्त शिर मौर सोई जो आपको मिटाय डाले, पतंग सम हो जाय ॥८८॥

साखी। श्वानके दसगुण सन्त लेते हैं। प्रथम भूखा रहना है, यह चिन्ह भक्तोंका है। दूजे गृह रहित है सो विरक्त का गुण है। तीजे सारी रैन जागना, यह गुण शीनिशालोंका है। चौथे मरे पीछे कुछ नहीं कहना, यह मुख्य विरक्तों का गुण है। पांचवां लक्षण, स्वामी का द्वार नहीं छोड़ना, यह सेवकों का गुण है। छठां, थोड़ी ठौर में गुजरान करना है, यह गरीबी की रीति है। सातवां गुण, जहांसे कोई उठा देवे, उठ जावे है, यह गुण राजी रहनेहारोंका है। आठवां, उठाये जाता है बोलाये आता है, यह गुण अमानियोंका है। नवां गुण, साईं जब चाहे देवे मांगता नहीं, यह गुण तपस्वियोंका है। दसवीं शिक्षा यह है— जो उसको तरफ ताकता है तब वह धनोंकी ओर नजर करता है, यह लक्षण मजजूबों (तल्लीन पुरुषों) का है ॥८६॥

साईं साथ प्यार इतना कर जितना सुख चाहता होय और पाप इतना करो जितना निरयकी आंच सहनेकी शक्ति होय। विश्वमें विस्तार इतना कर जितना दिन रहना होय ॥६०॥

जितना है तितना कहु, जितना कहु तितना कर। मन अपनेको बंधनमें राख, जो न राखेगा तो मन तुझको बांधिके चाहे जहां पटकेगा ॥६१॥

जो मनको जीता तो प्रभुके समीप रहेगा। जो मनने जीता तो सदा प्रभुसे दूर रहेगा ॥६२॥

मनका कहा न मानना रोके रहना, बड़ा वैरी है। एकान्त वास, सदा सत्संग। भोजन लघु, मौन जाग्रन करते रहना। तब इन रहस्य वचनका स्वाद होयगा। पण्डित वाचक ज्ञानी वैराग्य हीनन को यह न देना, मनमें मनन करना सदा॥

॥ इति श्री सन्त वचनावली समाप्त ॥

श्रीसीतारामाभ्यान्नमः

सन्त वचनावली

-:जिसको:-

तरण तारण अधमोंद्धारण सन्त शिरताज रसिकाधिराज

श्री १०८ स्वामी युगलानन्य शरणजी महाराज

(लक्ष्मणकोट, अयोध्यावासीने)

श्री १०८ परमहंसप्रवर श्री स्वामी सीता शरणजी महाराज,

कनकभवन निवासीके निमित्त निर्माण किया।

उसीको

उक्त श्रीपरमहंसजीके कृपापात्र शिष्य

श्री वाबू वजरङ्गलाल सराफ लकड़ सीतामढ़ी निवासीने

प्रकाशित किया।

प्रथमावृत्ति १०००] सं १९८० वै० [मूल्य प्रेम

प्रकाशक—
श्रीबाबू बजरंगलाल सराफ लक्कड़
सीतामढ़ी ।

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका,
"हनुमान प्रेस"
३, माधव सेठ लेन,
कलकत्ता ।